दिल्ली चलो

भारतीय स्वतन्त्रता-संघर्ष के अमर
सैनिकों की रोमांचकारी गाथा

———०००———

लेखक —
आनन्द विद्यालंकार · हरिश्चन्द्र

साहित्य मण्डल, दीवानहाल, देहली

उत्तर भारत के वितरक
श्री हरिश्चन्द्र, ११५ मौडल बस्ती, दिल्ली

प्रकाशक—
नवयुग का साहित्य प्रकाशन
कृष्णनगर,
भावनगर

प्रथम संस्करण

मूल्य २—)
डाक व्यय के साथ २।)
मुद्रक —धारा प्रेस देहली

—'दिल्ली चलो' मेरा और मेरे उन साथियों का नारा था जिन्होंने नेताजी सुभाषचन्द्र बोसरी कमान में हिन्दुस्तान से बाहर अपने देश की आजादी के लिए लड़ाई लड़ी। आज हम दिल्ली पहुच चुके हैं, किन्तु 'दिल्ली चलो' नारे में जो लक्ष्य निहित था, उसे हम अभी तक प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं। 'दिल्ली चलो' का अर्थ है—दिल्ली-जय और जब तक हम अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेते, हमारी लड़ाई जारी रहेगी। हिन्दुस्तान की मुक्ति के लिए हम अन्त तक लड़ेंगे।

कौन जीवित है यदि भारत दासताके बन्धन में बधा है।
कौन मृत है यदि भारत स्वतन्त्र है॥

जय हिन्द।

पी० के० सहगल

प्राक्कथन

स्वतन्त्र भारत की घोषणा, भारतभूमि के बाहर एक स्वतन्त्र भारत सरकार की स्थापना तथा राष्ट्रीय भारत-सेना का संगठन संसार के इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। समय आने पर हमें देश के प्रति अपने कर्तव्य का पूरा भान होगा। मुझे आशा है कि हम स्वतन्त्रता का, जो हमें बिना लड़े मिल जायगी, उपयोग हम अपने देशवासियों को उन्नत बनाने में करेंगे। तभी स्वतन्त्रता का पाना और उसे बनाए रखना सार्थक होगा।

हम लोग स्वतन्त्रता के द्वार पर पहुँच गए हैं। हो सकता है कि हमें इसके लिए लड़ाई न लड़नी पड़े। फिर भी यह घटना भी जानने योग्य है कि कम से कम २४ लाख भारतीय उस आजाद हिन्द सरकार के प्रति वफादार थे जो नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने सिंगापुर में स्थापित की थी। नेताजी के पास साहस था, कल्पना थी और संगठन शक्ति थी। यह ऐतिहासिक घटना है। हमें यह कहते गर्व होता है कि ऐसे भी लोग थे जिन्होंने अपने प्राणों को संकट में डालकर देश को स्वतन्त्र करने के लिए संगठन किया। इससे अधिक पवित्र ध्येय और क्या हो सकता है! संसार के इतिहास का यह एक गौरवशाली अध्याय है।

—भूलाभाई देसाई

प्रयाण–गीत

कदम कदम बढ़ाये जा
खुशी के गीत गाये जा
यह जिन्दगी है कौम की
तू कौम पै लुटाये जा

*

तू शेरे हिन्द आगे बढ़,
मरने से भी तू न डर
आसमां उठा के सर
जोशे वतन बढ़ाये जा

*

तेरी हिम्मत बढ़ती रहे
खुदा तेरी सुनता रहे
जो सामने तेरे अड़े
तू खाक में मिलाये जा

*

चलो दिल्ली पुकार के
कौमी निशां संभाल के
लाल किले में गाड़ के
लहराये जा, लहराये जा

*

घटना-क्रम——

२६ जनवरी १९४१	सुभाष बाबू लापता
७ दिसम्बर १९४१	सुदूरपूर्व में युद्ध शुरू
१५ फरवरी १९४२	सिंगापुर का पतन
प्रथम सप्ताह मार्च १९४२	सुभाष बाबू बर्लिन में
२४ जून १९४२	इंडियन इ० लीग की स्थापना
नवम्बर-दिसम्बर १९४२	पेनाग की स्वराज्य इन्स्टीट्यूट तथा आ० हि० फौ० पर संकट
१८ अप्रैल १९४३	इ० इ० लीग का यौद्धिक संगठन
४ जुलाई १९४३	श्री बोस इ० इ० लीग के अध्यक्ष
५ जुलाई १९४३	आ० हि० फौ० की सत्ता की घोषणा
२५ अगस्त १९४३	श्री सुभाष बोस फौ० के सिपहसालार
२१ अक्तूबर १९४३	आ० हि० सरकार की स्थापना
२२ अक्तूबर १९४३	रा० झाँ० रे० का उद्घाटन
२४ अक्तूबर १९४३	ब्रि० सा० व अमे० के वि० यु० घो०
८ नवम्बर १९४३	अ० डमान व निकोबार आजाद हिंद सरकार को सौंपे गए
१८ मार्च १९४४	आ०हि०फौ० का भारत सीमा में प्रवेश
२२ मार्च १९४४	भारत के मुक्त प्रदेशों के चटर्जी प्रथम गवर्नर
दिसम्बर-जनवरी १९४५	आजाद हिन्द फौज का दूसरा युद्ध
२४ अप्रैल १९४५	आजाद हिन्द सरकार रंगून से बैंकाक को
३ मई १९४५	ब्रिटिश सेना के हाथ रंगून का पतन
१५ अगस्त १९४५	जापान का आत्मसमर्पण
१८ अगस्त १९४५	नेताजी सुभाष की कथित मृत्यु
५ नवम्बर १९४५	आजाद हिन्द फौज का पहला मुकदमा
५ जनवरी १९४६	प्रथम मुकदमे में जनमत की विजय।



हिज एक्सीलेंसी, देश गौरव नेताजी
सुभाषचन्द्र बोस, 'डिपुटी फ्यूहरर
आव इण्डिया', प्रमुख, आरजी
हुकूमते ए आजाद हिन्द, सुप्रीम
कमाण्डर आजाद हिन्द फौज



मेजर-जनरल शाहनवा[illegible] और कर्नल [illegible]
और कर्नल सहगल अपनी मुक्तिके बा[illegible] जनत
का [illegible]यहि[illegible] द्वारा अभिनन्दन करते हु[illegible]

शेर पिंजरे से बाहर

यह २६ जनवरी १९४१ की प्रभात-वेला थी। देश के इस छोर से लेकर उस छोर तक एक उत्साह एवं हर्ष का समुद्र उमड़ रहा था। शहर शहर, कस्बे कस्बे और गांव-गांव में लोग प्रसन्नता से झूमते हुए और भारतमाता के प्रति सदा निष्ठावान रहने का प्रण करते हुए बड़ी-बड़ी टोलियों में उस दिन की याद मना रहे थे, जिस दिन देश के गौरव, युवकों के नेता प० जवाहरलाल नेहरू ने रावी के तट पर एकत्र लाख-लाख जन समुदाय के सम्मुख प्रथम बार भारत की पूर्ण आजादी की घोषणा करके नौकरशाही को स्तम्भित कर दिया था। स्थान स्थान पर तिरंगे झंडे शोभित थे। आसमान 'इन्कलाब जिन्दाबाद' 'महात्मा गांधीजी की जय' 'भारतमाता की जय' के गगनभेदी नारों से गूंज रहा था। प्रभात फेरियां निकाली जा रही थीं। प्रमुख स्थानों पर लोग सैकड़ों की संख्या में एकत्र हो आजादी के प्रतीक अपने तिरंगे झंडे को सलामी दे रहे थे और वन्देमातरम् के गंभीर उद्घोष से सारा वातावरण गुञ्जरित था।

अभी सारे देश में स्वतन्त्रता दिवस का यह महान समारोह मनाया ही जा रहा था कि कलकत्ता की गलियों में अकस्मात् एक सनसनी दौड़

गई। गलियों और सड़कों पर चलते फिरते लोग आश्चर्यचकित एवं प्रश्नात्मक मुद्रा से एक दूसरे को देखते, रहते थे। सब पढ़ते। सुभाष बाबू के एलगिन रोड वाले निजी मकान से गायब होने की खबर पाव को आग में आग की तरह सारे कलकत्ता में फैल गई। जो सुनता, औचक रह गया। बड़े शहरों के समाचारपत्रों के दफ्तरों में लगी टेलीप्रिंटर मशीनों पर झुके सम्पादक प्रकाशक भी इस तरह को पाकर आश्चर्यविमूढ़ रह गए। पत्रावद 'परिशिष्ट' निकाले जाने लगे। रेडियो से ब्राडकास्ट हुए। देखते ही देखते कलकत्ता के हर कोने में भी इस महत्वपूर्ण और गौरवशाली का खबर में बाज थे। वाली घटना का समाचार देश के हर कोने में फैल गया। लोग चकित थे कि सुभाष बाबू इस गोरी सरकार की आँखों में धूल झोंक कर कहाँ लुप्त हो गए जिनके गुर्गे सारे देश में फैले हुए हैं और जिनकी खुफिया पुलिस अपने कारनामों के लिये देश भर में प्रसिद्ध है।

सुभाष बाबू के इस प्रकार अकस्मात् ही लापता होने पर तरह तरह के अनुमानों का बाजार गर्म हो उठा। कोई कहता कि वह एक बार फिर साधु बनने की धुन में घर से निकले पड़े हैं और राजनीतिक पैंतरे बाजी से उन्हें विरक्ति हो गई है। सुभाष बाबू पर अपनी धर्म परायण माता तथा बाद में श्रीरामकृष्ण परमहंस की आध्यात्मिकता का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। इसीलिए एक बार विद्यार्थी अवस्था में साधु बनने की ललक में चुपके से घर से निकल भागे थे और हरद्वार, बनारस, वृन्दावन आदि तीर्थों में बहुत समय तक आत्म जिज्ञासा शान्त करने के लिए घूमते फिरते रहे थे। इस बार भी उनके मन में कुछ ऐसी ही धुन समायी हो और इसीलिए पिंजरे से निकल भागे हों, यह धारणा बहुतों के

दिल में घर कर गई, पर असली माजरा क्या है और भारत का यह प्यारा वीर पक्षी परतन्त्रता के पिंजरे से उड़कर किधर चला गया है, यह किसी को न मालूम हो सका। देश भर में इस आश्चर्यजनक समाचार से स्तब्धता छायी रही और लोग उत्सुकता भरे हृदयों से इस प्रतीक्षा में रहे कि देखें अब सरकार अपने उस 'बागी' का पता लगाने के लिए क्या करती है जिसे उसने मरणासन्न अवस्था में भी उसके अपने घर में नजरबन्द किया हुआ था, पर दिनके बाद दिन दिन बीतते गये। सरकार के गुरगे देश भर की खाक छानते फिरे। कलकत्ता से काबुल और काश्मीर से कन्याकुमारी तक की चप्पा चप्पा भूमि पर खुफिया पुलिस का जाल तान दिया गया पर सरकार की सब मेहनतें बेकार रहीं। एक बार जो वह गया फिर कभी हाथ नहीं आया।

संघर्षमय जीवन

सुभाष बाबू प्रारम्भ से ही बड़े भावुक और उग्रवादी विचारों के थे। देश की आज़ादी के लिए उनके दिल में गहरी तड़प विद्यमान थी और वे उसके लिए सब कुछ वार देने को उद्यत रहते थे। १९२० में स्व० देशबन्धु चित्तरंजन दास ने उनके दिल में आज़ादी की जो आग जलाई वह उनके हृदय में एक देवता के पुजारी के रूप में सदा जलती रही। दिन रात उनका एक ही स्वप्न रहा—'भारत माता की स्वतन्त्रता'। अपने इस स्वप्न को सत्य करने में उनको १९२० के बाद न जाने कितनी बार जेल की कठोर यातनाएं और देश निर्वासन का कष्ट भुगतना पड़ा। पर वह भारत का अविश्रान्त और कभी न हिम्मत हारने वाला सिपाही था। नौकरशाही की ये घातक चोटें उसे उसके कर्म पथ से ज़रा भी विचलित नहीं कर सकीं। १९२७ में माण्डले की जेल में जब उनका स्वास्थ्य अत्यन्त गिर गया और डाक्टरों ने उन्हें स्विट्ज़रलैण्ड जाने की सलाह दी तब उन्होंने अपने भाई श्री शरत बोस को जेल से एक पत्र में लिखा—'मैं अनिश्चित काल के लिए विदेश में रहने की अपेक्षा भारत की जेल में ही तिल तिल करके मर जाना पसन्द करूंगा। सरकार का क्या भरोसा है कि वह मुझे कब तक निर्वासन में रक्खे ... ।'

"स्वतन्त्रता का अमूल्य कोष प्राप्त करने के लिए तो हमें व्यक्तिगत और सामुदायिक दोनों तरह का कष्ट उठाना होगा। ईश्वर को धन्यवाद है कि मेरे हृदय में शांति है। मैं ऐसी किसी भी आपत्ति का शांतिपूर्वक सामना करने में समर्थ हूं जो मेरे भाग्य में लिखी होगी। मैं समझता हूं कि मैं अपने राष्ट्र के अतीत काल के पापों का अपने ढंग से प्रायश्चित्त कर रहा हूं और इसका मुझे सन्तोष है। हमारे विचार अमर हैं, वे राष्ट्र के स्मृति पटल से नहीं उतर सकते। हमारे सुन्दर स्वप्नों की विरासत आनेवाली पीढ़ियों को मिल जायगी - यही विश्वास और आशा है, जो मुझे इस दण्ड काल में सदा सहारा देंगे।"

मातृभूमि की मुक्ति के लिए यह उत्कट भावना और तीव्र उत्सुकता का परिणाम यह हुआ कि जहां वे एक ओर शुरू से ही सरकार की आंखों का कांटा बन गए वहां गांधीवादियों के साथ भी उनकी पटरी ठीक तरह से न बैठ सकी। गांधीजी और उनके राजनीतिक भक्तों का यह विश्वास था कि आजादी के लिए बहुत जल्दबाजी से कुछ फल नहीं निकलेगा और उससे देश की स्वतन्त्रता का प्रश्न और भी बिगड़ जायगा, पर युवक समाज के हृदय में स्वतन्त्रता की आग जल रही थी। वह आग समस्त बाधाओं के घासफूस को जलाकर राख कर देना चाहती थी। उसे विलम्ब सह्य नहीं था। यही कारण था कि लाहौर कांग्रेस में यद्यपि पं॰ जवाहरलाल नेहरू ने पूर्ण स्वतन्त्रता का बिगुल फूंका था, पर उससे सुभाष के दिल को संतोष नहीं हुआ। आखिर, आजादी के दीवाने को इतने मात्र से कैसे संतोष होता! वह गांधीजी की इस धीरे धीरे वाली नीति के विरुद्ध था। उसने उस समय यह इच्छा प्रकट की कि नौकरशाही के खिलाफ 'मुकाबले की सरकार' का निर्माण किया जाय, पर उन दिनों गांधीभक्तों के नक्कारखाने में

सुभाष बाबू की अकेली तूती की आवाज कौन सुनता। उनके दिल में भारत माँ को विदेशी सरकार के खूनी पंजे से छुड़ाने की अदम्य लालसा राख में दबी आग की तरह दिन दूनी और रात चौगुनी रूप में सुलगती रही। पर वे अनुशासन और संगठित कार्य के महत्व को खूब समझते थे। इसलिये विचारभेद होने पर भी वे पहले की भाँति ही अपने सम्पूर्ण हृदय और शक्ति से कार्य करते रहे। उन्होंने १६३३ की कराची कांग्रेस में गांधी इरविन पैक्ट का विरोध किया, पर फूट की आशंका से उसे स्वीकार कर लिया और वहाँ—कराची में अ० भा० नवयुवक भारत सभा का सभापतित्व करते हुए साम्यवादी प्रजातन्त्र शासन का समर्थन किया और ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध विच्छेद करने तथा किसानों, मजदूरों और नौजवानों को साम्यवाद के आधार पर संगठित करने की सलाह दी। और उसी अवसर पर गांधीजी द्वारा कांग्रेस कार्यसमिति में सुभाष बाबू के सम्मिलित न किये जाने पर भी उन्होंने यह विश्वास दिलाया कि मैं गांधीजी का साथ दूंगा, चाहे सदस्य चुना जाऊं या नहीं। वे अपने हृदय में इस तथ्य को अच्छी तरह अनुभव करते थे कि स्वतन्त्रता के उस देशव्यापी आंदोलन में फूट का अर्थ होगा—गुलामी के तौक के उतरने में और भी विलम्ब। इसलिए वे हर मूल्य पर देश में उठ रहे स्वतन्त्रता के ज्वार को दो विभिन्न धाराओं में विभक्त करना नहीं चाहते थे। पर जो आग उनके हृदय में सुलग रही थी वह समय-समय पर प्रकट होती रही। १६३२ के समाप्ति काल में जबकि देश के हर कोने में जानबुल का दमन चक्र अपने पूरे जोरों से घूम रहा था, आर्डिनेंसों का बोलबाला था, गांधीजी गोलमेज कान्फ्रेंस से लौट रहे थे, सुभाष बाबू ने बम्बई में होनेवाली कांग्रेस कार्यसमिति को यह अल्टीमेटम दिया—'यदि

सरकार के बार-बार संधि भंग करने पर भी, जैसा कि आर्डिनेंसों से प्रकट है, कांग्रेस कार्यसमिति युद्ध की घोषणा न करेगी तो मैं उसकी स्वीकृति के बिना ६ बंगाल में बाहैसियत आंदोलन शुरू कर दूंगा। पर वह आन्दोलन कभी शुरू न हो सका। सुभाष बाबू बम्बई से लौटते हुए ही सरकारी मेहमान बना लिये गये और बाद में जेल में अत्यन्त बीमार होने के कारण स्वास्थ्य लाभ के लिए उन्हें वियना (इंग्लैंड नहीं) भेज दिया गया। स्वास्थ्य की इस अत्यन्त विषम अवस्था में भी उनके मन में एक ही भावना—देश के स्वतन्त्रता आंदोलन को अधिक सजग व उग्र आधार पर चलाने की भावना—उद्बुद्ध होती रही। इसीलिए वियना में रहते हुए उन्होंने और प्रेसीडेंट पटेलने सविनय अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित करने के निश्चय पर एक संयुक्त वक्तव्य में कहा कि—'आंदोलन को स्थगित करने की घोषणा के साथ कांग्रेस ने अपनी असफलता को स्वीकार कर लिया है। समय आ गया है कि कांग्रेस के संगठन में मौलिक परिवर्तन किया जाय। वह संगठन नये सिद्धान्तों पर, नय तरीके पर और नये नेताओं के नेतृत्व में होना चाहिए।'

सुभाष बाबू उग्रवादी और कांग्रेस की कार्यकारिणी में परिवर्तन के इच्छुक अवश्य थे पर उनका उग्रवाद उच्छृंखल नहीं था। वह परिस्थितियों के अनुसार अपनी सीमा बनाना जानता था। तीव्र विचारभेद होने हुए भी वे अरदवामी में कोई कार्य करना नहीं चाहते थे, जो तात्कालिक स्थिति में देश की स्वतन्त्रता के पक्ष में विघातक हो या उसको चोट पहुंचाने वाला हो। यही कारण था कि इन सब मतभेदों के बावजूद भी देश के बड़े-बड़े नेता उनके सहयोग को बड़ा मूल्यवान समझते थे और उनको सर्वाधिक उत्तरदायित्वपूर्ण पद देने को उत्सुक रहते थे। इधर सुभाष बाबू भी अपनी डेढ़ ईंट की मस्जिद अलग खड़ी करने

की अपेक्षा अपेक्षाकृत कम उग्र नेताओं के साथ कंधे से कंधा मिलाकर नौकरशाही से टक्कर लेना देश के हित में अधिक उपयुक्त समझते थे। वे यह बात हृदय से अनुभव करते थे कि ब्रिटिश सरकार के खिलाफ कठोर कदम उठाने का ठीक अवसर अभी नहीं आया है, देश अभी उस रूप में जागृत नहीं हुआ है कि समान प्रतिद्वंदी के रूप में उसका मुकाबला किया जा सके तथा इतनी साधन सामग्री हमारे पास नहीं है कि बन्दूक तोप और बमवर्षकों से लैस ब्रिटिश सरकार के खिलाफ जंग का ऐलान किया जा सके। पर ऐसा करने की तीव्र लालसा उनके हृदय में लहरें मार रही थीं। वे इस देश से अंग्रेजी हकूमत का नामोनिशां मिटा देना चाहते थे। इसी का परिणाम था कि जब हरिपुरा काँग्रेस में देश ने उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर उन्हें राष्ट्रपति का पद देकर सम्मानित किया तो उन्होंने उक्त पद से भाषण देते हुए भारत की समस्या का मूल निदान इस देश से अंग्रेजों का निष्कासन ही बताया।

सन १९३८-३९ का वर्ष था। हरिपुरा काँग्रेस के बाद सुभाष बाबू का राष्ट्रपतित्व काल चल रहा था और वह अपने आदर्शों को क्रियान्वित करने के लिए अपने ढंग पर देश की बागडोर सम्भाले हुए थे। सम्भावित विश्वयुद्ध की आशंका से अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण उद्वेलित था। चैकोस्लोवाकिया, आस्ट्रिया, और स्पेन पर जर्मनी के अत्याचार के परिणामस्वरूप यूरोप का हर देश युद्ध की तैयारियों में संलग्न था। बड़े बड़े राजनीतिज्ञ और सेना विशेषज्ञ किसी एक ऐतिहासिक 'क्षण' की प्रतीक्षा में थे। सब देशों की आँखें जर्मनी के एडोल्फ हिटलर और ब्रिटेन के नवाइल चेम्बरलेन पर लगी हुई थी। इधर स्वदेश में राष्ट्रपति सुभाष भी तेजी से घूमते हुए यूरोप के इस घटनाचक्र को बड़े गौर से देख रहे थे। हृदय में ज्वाला धीमे धीमे

सुलग रही थी वह देख रही थी कि उसके सिर उठाने का समय आ रहा है। देश में जो उग्रपंथी लोग थे वे सरकार की भारत के प्रति उपेक्षावृत्ति से ऊब चुके थे। अन्तरार्ष्ट्रीयता के क्षितिज पर उन्होंने तूफान की जो काली छाया देखी तो उनके मन में इस अवसर का पूरा पूरा लाभ उठाने का दृढ़ निश्चय जाग उठा। एक कोने से आवाज उठी कि ब्रिटिश सरकार को अल्टीमेटम दे दिया जाय कि वह 8 महीने के भीतर भारत को छोड़ दे। कांग्रेस के त्रिपुरी-अधिवेशन से दो मास पूर्व जलपाईगुड़ी में थी शरतचन्द्र बोस की अध्यक्षता में बंगाल प्रांतीय राजनैतिक सम्मेलन में एक प्रस्ताव स्वीकार करके कांग्रेस से यह सिफारिश की गई कि वह ब्रिटिश सरकार को भारत छोड़ देने के लिए ६ मास का अल्टीमेटम दे अन्यथा स्वाधीनता के अंतिम संग्राम का शंख फूंक दिया जाय।

ब्रिटिश सरकार के खिलाफ आन्तरिक विद्रोह का यह बाह्य रूप था। उग्रपंथी लोग इस एक 'मोर्चे' पर देश के सारे गरमदलियों को संगठित कर रहे थे। राष्ट्रपति के उत्तरदायित्वपूर्ण पद से थी सुभाष बाबू ने यद्यपि इस सम्बन्ध में कोई घोषणा नहीं की थी तथापि यही भावना उनके हृदय में भी सम्पूर्ण रूप से विद्यमान थी और वे अवसर की प्रतीक्षा में थे।

कांग्रेस के ५२ वें अधिवेशन का समय समीप आ रहा था। जबलपुर के समीपवर्ती त्रिपुरी स्थान को उसके लिये चुना गया था। त्रिपुरी अधिवेशन कांग्रेस के इतिहास में एक सदा अमर अधिवेशन रहेगा। यह वही स्थल है जहांसे गांधीपंथियों व सुभाषपंथी उग्रवादियों के के मार्ग अलग अलग फट गये। सुभाष बाबू ने जैसे मन ही मन अनुभव किया कि अब 'मां' को मुक्त करने का उपयुक्त अवसर आ गया

है और धीरे धीरे चलने वाले गांधीपंथियों के साथ उनकी पटरी और अधिक दूर तक नहीं बैठ सकती। गांधीजी ने त्रिपुरी अधिवेशन के अध्यक्ष पद के लिए डा० पट्टाभि का नाम प्रस्तुत किया। गांधीजी की नीति एवं कार्य प्रणाली में विश्वास करने वाले सरदार पटेल, राजेन्द्र बाबू प्रभृति देश के सब चोटी के नेताओं ने इस नाम का समर्थन किया। पर राष्ट्रपति सुभाष स्वयं इसके विपक्ष में थे और वे अवसर का लाभ उठाते तथा अपनी योजना को क्रियान्वित करने की दृष्टि से आगामी वर्ष भी राष्ट्रपति पद पर बने रहना चाहते थे। उन्होंने अपना नाम नहीं लौटाया। फलतः त्रिपुरी अधिवेशन के राष्ट्रपति पद के लिए देश के सामने दो नाम रहे—एक डा० पट्टाभि का और दूसरा श्री सुभाष बोस का। यह चुनाव स्वरूप देश के दो प्रमुख नेताओं के बीच का न होकर दो परस्पर भिन्न आदर्शों और कार्य प्रणालियों के मध्य था। गांधीजी ने बहुत जोर मारा, पर डा० पट्टाभि को चुनाव में सफलता नहीं मिली और श्री सुभाष बोस भारी बहुमत से पुनः राष्ट्रपति घोषित कर दिए गए। देश ने सुभाष बाबू को अपना राष्ट्रपति चुनकर जहां उनकी भारतमाता के प्रति की गयी अमूल्य सेवाओं का सम्मान किया, वहां यह भी दिखा दिया कि हवा का रुख किधर है। गांधीवादियों और 'धीरे-धीरे चलो'-की यह भारी पराजय थी। उस समय गांधीजी ने एक वक्तव्य में कहा था—यह डा० पट्टाभि की पराजय नहीं मेरी पराजय है।' पर सुभाष बाबू इस विषय में बड़े सतर्क थे और वे यह नहीं चाहते थे कि राष्ट्रपति के चुनाव की इस घटना को लेकर कांग्रेस में फूट के रूप लें। इसीलिए चुनाव के पश्चात ही आपने घोषणा की—'भारतीय स्वतन्त्रता के शत्रुओं को यह न समझना चाहिए कि हममें परस्पर फूट है। हम सब एक ही हैं। कांग्रेस की शक्ति अविभक्त है।' पर त्रिपुरी

में पारस्परिक वैमनस्य का प्रदर्शन न टल सका। उन दिनों सुभाष बाबू तीव्र ज्वर से पीड़ित थे। वे अधिवेशन में स्ट्रेचर पर लेट कर आये थे। उनकी ऐसी अस्वास्थ्यपूर्ण अवस्था में ही कांग्रेस कार्यसमिति के पुराने बारह सदस्यों ने त्यागपत्र देकर एक गतिरोध पैदा कर दिया। इस अधिवेशन में राष्ट्रपति सुभाष ने अपने राष्ट्रपति के पद से दिये भाषण में ब्रिटिश सरकार को ६ मास का अल्टीमेटम देने का प्रस्ताव रक्खा, पर अधिवेशन में गांधीपंथी अधिकारी वर्ग की प्रबलता के कारण उनका प्रस्ताव स्वीकार न हो सका। कांग्रेस में बढ़ते हुए इस विषम मतभेद तथा गतिरोध के कारण श्री सुभाष बाबू को अन्ततः अध्यक्षपद से त्याग-पत्र दे देना पड़ा और तब वे स्वतन्त्र रूप से अपने उग्र विचारों का खुले आम प्रतिपादन करने लगे। इसी के परिणामस्वरूप अन्त में 'अग्रगामी दल' की नींव पड़ी और कहा जाता है कि कलकत्ता के एक प्रसिद्ध मारवाड़ी सेठ ने उनको उसके संगठन के लिये गुप्त रूप से ५ लाख रुपये भी दिये।

सुभाष बाबू के इस कार्य से गांधीपंथियों और सुभाषपंथियों के मत-भेद की खाई और भी गहरी हो गई। कांग्रेस कार्यकारिणी में गांधीवादी सदस्यों की प्रधानता के कारण श्री बोस को अनुशासन भंग का अपराधी घोषित करके तीन वर्ष तक के लिये कांग्रेस के पदों के अयोग्य करार दे दिया गया। पर सुभाष बाबू पद के इच्छुक नहीं थे। वे ठोस कार्य करना चाहते थे। इसलिए कांग्रेस अधिकारियों के इस सम्पूर्ण विरोध के बावजूद वे मैदान में डटे रहे।

उधर यूरोप में अचानक ही मशालें जल उठीं और संसार जिस युद्ध की १९३८ से दिल थाम कर आशंका कर रहा था वह आ पहुंचा। जर्मनी की विशाल पदाति सेना ने बिना कोई पूर्व सूचना दिये १ सितम्बर

की प्रजा ने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। दो दिन बाद ही ब्रिटेन की ओर से भी युद्ध घोषणा कर दी गई। युद्ध की यह आग धीरे-धीरे सारे यूरोप में फैलने लगी। जर्मनी ने बिजली की तरह से एक के बाद दूसरे देश पर कब्जा करना शुरू कर दिया। युद्ध प्रारम्भ हुए एक समय सा मालूम पड़ता था कि दुनिया में आतंक के साथ युद्ध कि ब्रिटेन को यह प्रबल शक्ति जिसकी सत्ता आज संसार में व्याप्त रही थी, धराशा-यी होने-सा मालूम होता था। दिल्ली में दिल्ली आ रही है और जर्मनी ने पोलैण्ड, नार्वे, डेनमार्क, बेल्जियम, हालैण्ड और फ्रांस पर कब्जा कर लिया है। इस बीच में भारत सरकार ने केन्द्रीय असेम्बली की कोई राय लिए बिना ही भारत को सारे के सारे जर्मनी के खिलाफ युद्ध का ऐलान कर दिया। इस ऐलान से सारे देश में आग लग गई, विरोध का ज्वार उमड़ पड़ा। यद्यपि पं० जवाहरलाल नेहरू प्रभृति नेता जर्मनी के नाज़ीवाद तथा इटली के फासिज्म के प्रति अपने भाषणों में अत्यन्त तीव्र विरोध प्रकट कर चुके थे, परन्तु भारत सरकार ने जनता की चुनी प्रतिनिधि केन्द्रीय असेम्बली की जो घोर उपेक्षा करके देश का अपमान किया उसको कोई भी स्वाभिमानी भारतीय सहन नहीं कर सका। प्रान्तीय धारासभाओं में इसके विरोध में प्रस्ताव पास किये गये और कांग्रेस ने १९३७ में बहुत विचार विमर्श के बाद देश के ७ प्रान्तों में जिन मन्त्रिमण्डलों को स्वीकार किया था, उनका परित्याग कर दिया। भारत सरकार की इस मन-मानी नीति की सारे देश में कड़ी आलोचना की गई। पर सरकार के कानों पर जूँ भी नहीं रेंगी। यह सारी निन्दा—आलोचना भी अपने कानों सुनती रही।

यूरोप की भूमि पर युद्ध चक्र को घूमते हुए ७ मास बीत गये। इन महीनों में बहुत कुछ उलटफेर हुए और यूरोप के एक दिन स्वतन्त्र रहे देशों

पर नाजी भरडे फहराने लगे। दुनिया को ऐसा लगा कि वह दिन अब दूर नहीं जबकि न केवल ब्रिटिश साम्राज्य, जिसके राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता, अपितु सारी की सारी मित्र शक्तियां सदा के लिए नष्ट हो जायेंगी और जर्मनी का सितारा आसमान में बुलन्द होगा। एशिया तथा अन्य महाद्वीपों के जो राष्ट्र ब्रिटिश सरकार की गुलामी के शिकंजे में फंसे हुए थे उन्होंने ऐसा अनुभव किया जैसे कफस की बुलबुल की मुक्ति का अवसर आ पहुंचा है। भारत में भी यही भावना विद्यमान थी। जनता यह चाहती थी कि ब्रिटिश सरकार के इस संकटपूर्ण अवसर का पूरा पूरा लाभ उठाया जाय, पर देश की सबसे अधिक शक्ति सम्पन्न एवं लोकप्रिय संस्था कांग्रेस के अधिकारीवर्ग का यह मत था कि असहयोग की संघर्ष की अब कोई जरूरत नहीं पड़ेगी। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से बाधित होकर ब्रिटिश सरकार को स्वयं भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा कर देनी पड़ेगी और उसके लिये कोई सक्रिय कदम उठाना न पड़ेगा। किन्तु देश में उन लोगों की भी कमी नहीं थी जो इसके सर्वथा विपरीत मत रखते थे। वे इस स्वर्ण अवसर पर हाथ पर हाथ रख कर चुपचाप आजादी की प्रतीक्षा न करके कुछ कर गुजरना चाहते थे। सुभाष बाबू इनके लीडर थे। इसी का यह परिणाम हुआ कि जब १९४४ के मार्च में रामगढ़ के मौ० आजाद की अध्यक्षता में कांग्रेस अधिवेशन हुआ, सुभाष ने देश के उन लोगों को संगठित करके एक समझौता विरोधी सभा की जो कांग्रेस की निष्क्रिय नीति तथा आजादी की घोषणा के स्वप्न में ब्रिटिश सरकार से हाथ मिला लेना चाहते थे। उसके बाद देश भर में युद्ध विरोधी आंदोलन शुरू हो गया। बहुत से उग्रपंथी लोग जेलों में ठूंस दिये गए। इसी अर्से में श्री सुभाष ने 'कलकत्ता की उस बदनाम 'कालकोठरी' को हटा देने का आंदोलन

खड़ा किया जिसके विषय में यह कहा जाता है कि बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला ने वहां १४४ अंग्रेजों को बन्द करके मार डाला था। अधिकारी इतिहासज्ञों ने इस घटना को अप्रमाणिक एवं असत्य बतलाया है और प्रत्यक्षदर्शियों का भी यह कथन है कि उस छोटी सी कोठरी में १४४ आदमी गिनकर भी नहीं आ सकते। सुभाष बाबू भारतीय इतिहास के पन्नों में से इस झूठे कलंक को मिटा देने के लिये कटिबद्ध थे। कालकोठरी-विरोधी उस आन्दोलन में उनका अनेक बंगालियों ने साथ दिया। आन्दोलन के जोर पकड़ने पर बंगाल की तात्कालिक हक-सरकार ने श्री सुभाष बोस को गिरफ्तार कर नजरबंद कर दिया। इस नजरबंदी की अवस्था में उन्होंने भूख हड़ताल शुरू कर दी, जिसके परिणामस्वरूप उनका स्वास्थ्य दिन पर दिन तेजी से गिरने लगा। अवस्था यह आ गयी कि सरकार ने उनके जीवन को खतरे में देखकर कलंक से बचने के लिए उन्हें मुक्त कर दिया और उन्हें अपने मकान से कहीं अन्यत्र न जाने के लिए प्रतिबंध लगा दिया।

आखिर यह प्रतिबन्ध भी सुभाष बोस के लिये बन्धन सिद्ध हुआ और पिंजरे का यह पक्षी, जो अपनी तथा अपने देश की आजादी के स्वप्नों की पूर्ति लिये छटपटा रहा था, भारत के इतिहास में सदा अमर रहने वाले १६ जनवरी के स्वतन्त्रता दिवस को नौकरशाही की आंखों में धूल झोंक कर उड़ चला—न जाने किस ओर।

बर्लिन रेडियो पर

१९४२ का अगस्त मास शुरू हुआ था। लोग रेडियो पर कान लगाये हर क्षण नयी घटना की प्रतीक्षा में थे। जर्मनी का युद्ध दैत्य अपने लोह चरण से सारे यूरोप को रौंदता हुआ बिजली की तेजी से आगे बढ़ता जा रहा था। मित्रराष्ट्र किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे कि हिटलर की इस दुर्धर्ष सेना के अप्रतिहत वेग को कैसे प्रतिरुद्ध किया जाय। उधर सुदूरपूर्व में जापान भी कहर बरपा कर रहा था। उसे युद्ध में कूदे अभी पूरे ८ मास भी नहीं बीते थे कि उसने एक ही झपाटे में प्रशान्त सागर में हजारों मील की दूरी पर फैले हुए फिलिपाइन, जावा, सुमात्रा, सिंगापुर, बोर्नियो, सोलोमन आदि अनगिनत द्वीपों पर कब्जा कर लिया था। नक्शों के लाल रंग केसरिया होते जा रहे थे और प्रशान्त महासागर से ब्रिटिश साम्राज्य की सारी शान जापान की एक ही चोट से मिट्टी में मिली जा रही थी। ब्रिटिश सरकार हैरान थी कि वह क्या करे। दो पाटों के बीच में होने के कारण उसे यह सूझता न था कि वह धूल में मिले जा रहे अपने सुदूरपूर्वी साम्राज्य एवं प्रभुत्व की रक्षा कैसे करे। भारत में स्थान-स्थान पर कई प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। सरकार बड़ी आशंकित और सतर्क

थी छिपकी ऐसे तक बाग में हिंदुस्तानियों के हृदय में विद्रोह न पैदा हो जाय। अनेक स्थानों पर भागों को पुरी रेडियो सुनने की मनाही कर दी गई थी और खुफिया पुलिस के आदमी इस ताक में रहते थे कि कहीं कोई आदमी बर्लिन या टोकियो के रेडियो का काम तो नहीं कर रहा। इस सिलसिले में अनेक व्यक्ति पकड़े जा चुके थे। अनेक रेडियो जब्त कर लिए गये थे। कांग्रेस में यह आशा की थी कि सरकार परिस्थिति की जटिलता से विवश होकर सहयोग के लिए हाथ बढ़ायेगी, पर हुआ बिलकुल उलटा ही। स्थिति और भी अधिक बिगड़ गई और कांग्रेस की सारी आशाएं धूल में मिल गई। सरकार की अत्यन्त तीव्र उपेक्षा का परिणाम यह हुआ कि जो दक्षिणपंथी एक दिन सरकार के साथ सशर्त सहयोग के लिये उत्सुक थे उनमें भी सरकार के खिलाफ सक्रिय विद्रोह का भाव अपनी जड़ जमाने लगा। आग अन्दर ही अन्दर सुलगती रही।

अगस्त के प्रथम सप्ताह में बम्बई में अखिल भा० कांग्रेस महासमिति का अधिवेशन जारी था। लोगों को इस बार बड़ी बड़ी आशाएं थीं। सरकार की उपेक्षा और कांग्रेस की निष्क्रिय नीति से जनता ऊब चुकी थी और वह संघर्ष के लिए अन्दर ही अन्दर तैयार थी। महासभा के नेताओं ने भी इस बार कठोर कदम उठाने का निश्चय कर लिया था। १९३९ में भी सुभाष बाबू ने जो कुछ कहा था, कांग्रेस के दक्षिणपंथी आज उसे हृदय से अनुभव कर रहे थे और यह समझ रहे थे कि लोहे पर चोट करने का समय आ पहुंचा है। विद्रोह के रूप में केवल चिनगारी की देर थी। परन्तु महात्मा गांधी अत्यन्त सतर्कता और सावधानता से कदम बढ़ा रहे थे। कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव की भूमिका तैयार हो चुकी थी। ८ अगस्त को खुले अधिवेशन में जब इस प्रस्ताव को रखा गया तो देश के कोने कोने में

उत्साह और जोश की एक लहर दौड़ गयी। लोग तो तैयार बैठे थे। वे तो केवल इस प्रतीक्षा में थे कि सत्याग्रह का सूत्रधार और कांग्रेस की बागडोर सम्भालने वाला वह वृद्ध सेनानी महात्मा गांधी उन्हें क्या आदेश देता है। पर भारत के भाग्य में वे आदेश नहीं बदे थे। सरकार ने ६ अगस्त की भोर होते हुये गांधी, नेहरू प्रभृति सब प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया।

देश के प्रमुख नगरों में टेलीफोन खनक उठे और नेताओं की गिरफ्तारी का यह समाचार सुबह होते होते ही सारे देश में आग की तरह फैल गया। यह सब कुछ एकदम अनाशित न होते हुए जनता ने विस्मय विस्फारित नेत्रों से इसे देखा और सुना। धैर्य ने अपनी सीमा छोड़ी और निराशा के सीमातीत छोर से भीषण विद्रोह का एक ज्वार फूट पड़ा। आग की चिनगारियां देश के कोने कोने में छा गयीं और उसी आग में बड़ी बड़ी सरकारी इमारतें, दफ्तर, डाकखाने और स्टेशन धू धू करके जलने लगे। पटरियां उखाड़ी जाने लगीं, रेलें गिरायी जाने लगीं और सरकारी स्थानों पर कब्जा किया जाने लगा। बलिया में आजादी के लिए बावली हुई जनता ने बिना कोई खून-खराबी किए मुकामी की सरकार स्थापित कर ली। यह सब कुछ हुआ बिना किसी अधिकृत आदेश और पूर्व योजना के। देश में जो कुछ जगह हुआ, खून की बीमारी की तरह सब जगह फैला ही हुआ। सरकार स्तम्भित थी। उसे इस प्रकार के देशव्यापी विद्रोह की आशंका नहीं थी। पर फिर भी वह असावधान नहीं थी। विद्रोह के फूटते ही दमन का रौद्र चक्र तेजी से घूमने लगा। जगह-जगह गोलियां चलीं, सामूहिक जुमाने किये गए और सहस्रों व्यक्तियों को गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिया गया। भीषण दमन ने जनता में एक आतंक सा बिठा

दिया। तथापि, सरकार के विरुद्ध गुप्त रूप से वैयक्तिक कार्यवाहियां जारी रहीं।

अचानक ही पावस की एक शाम को एक घटना ने लोगों को आश्चर्य से अभिभूत कर डाला। शाम का खाना खाकर लोग अपने-अपने घरों में बैठे रेडियो सुन रहे थे कि अचानक ही बर्लिन रेडियो से हिन्दुस्तानी उद्घोषक डा० अब्दुलराय मलिक ने घोषणा की—'अब आप नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का भाषण सुनिए।' यह एक असाधारण घटना थी। सुभाष बाबू ने अपने इस भाषण से २० मास तक लापता रहने के बाद जहां पहली बार यह प्रकट किया कि वे कहां हैं, वहां कांग्रेस के 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव का स्वागत करते हुए अगस्त आन्दोलन को सफलतापूर्वक संचालन की योजना भी देश के सम्मुख रखी। उसके बाद तो बर्लिन रेडियो से बंगला, अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी में उनके अनेक भाषण हुए और जर्मन सरकार ने तो उनके भाषणों के रिकार्ड भरवा कर अनेक बार जर्मन रेडियो पर प्रसारित किए। इसी प्रकार के एक भाषण में भी सुभाष ने यह घोषणा की—

"ब्रिटिश प्रोपेगेंडे के बावजूद विवेकशील सब भारतीयों को यह तथ्य पूर्ण रूप से हृदयङ्गम कर लेना चाहिए कि इस विस्तृत संसार में भारत का केवल एक ही शत्रु है—वह शत्रु है ब्रिटिश साम्राज्यवाद, जो १०० वर्ष से अधिक समय से उसका शोषण कर रहा है और जो 'मां-भारती' की जीवन-शक्ति को चूस रहा है।

"मैं मित्रराष्ट्रों का अधीन नहीं हूं। मेरा सम्बन्ध तो भारत से है। जब ब्रिटिश साम्राज्यवाद की पराजय हो जायगी, भारत आज़ाद हो जायगा। दूसरी ओर यदि इस युद्ध में उसकी

जीत होती है तो भारत के माथे गुलामी का पट्टा शाश्वत काल के लिए बंध जायगा। भारत को इस समय स्वतन्त्रता और दासता के बीच में से एक का चुनाव करना है। उसे चुनाव तो करना ही होगा •

"ब्रिटेन के पेशेवर प्रोपैगैण्डिस्ट मुझे शत्रु का एजेण्ट बता रहे हैं। अपने देशवासियों को भाषण करते हुए आज मुझे विश्वास दिलाने की आवश्यकता नहीं है। मेरा समस्त जीवन ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ एक लम्बे, निरन्तर लौह संघर्ष की कहानी है और वही मेरी ईमानदारी का सबसे बड़ी गारंटी है। अपने सारे जीवन में मैं भारतमाता की सेवा करता रहा हूं। जीवन की अन्तिम लौ तक मैं उसी की सेवा करता रहूँगा। दुनिया के किसी भी हिस्से में मैं रहूँ, भारतमाता के प्रति मेरी निष्ठा व भक्ति सदा अटूट रही है और अटूट रहेगी।

"यदि आप लोग आज विभिन्न युद्ध क्षेत्रों में घटित घटना-क्रम का अपनी तथा निष्पक्ष दृष्टि से अध्ययन करें तो आप भी उसी परिणाम पर पहुंचेंगे, जिसपर मैं पहुचा हूँ, कि दुनिया की कोई ताकत ब्रिटिश साम्राज्य के विनाश को नहीं रोक सकती। हिंद महासागर की चौकियां पहले ही ब्रिटेन की समुद्री शक्ति के हाथ से निकल गई हैं माण्डले का पतन होगया है और मित्र सेनाएं बर्मा की भूमि से निकाल बाहर कर दी गई हैं

"देशवासियो! आज जब ब्रिटिश साम्राज्य इस प्रकार मिट्टी में मिला जा रहा है, भारत की मुक्ति का दिन समीप आ पहुंचा है। मैं आपको यह याद दिला देना चाहता हूँ कि भारत

की आज़ादी की पहली लड़ाई १८५७ में शुरू हुई थी और आज़ादी की आख़िरी लड़ाई १९४३ में शुरू हो गई है। अपनी कमर कस लो। भारत की मुक्ति का यह मौका ही है,

"आज़ाद हिन्द ! मर्द और औरत की आज़ादी हासिल करो। और फिर उसके भविष्य का निर्माण पूरी आज़ादी के साथ बिना किसी हस्तक्षेप के करो। स्वतन्त्र भारत में एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था कायम की जायगी, जिसका आधार न्याय, समानता और बन्धुत्व के अमर सिद्धान्त होंगे।"

सुभाष बाबू के इस प्रकार आकस्मिक रूप में प्रकट हो जाने पर देश भर में अफवाहों का बाजार गर्म हो उठा। लोग उनके भागने के सम्बन्ध में तरह-तरह की अफवाहें उड़ाने लगे।

जिस समय सुभाष बाबू घर से भागे, उस समय वे जेल से मुक्त होकर कलकत्ता के एल्गिन रोड वाले अपने मकान के एक कमरे में नजरबन्दी का जीवन बिता रहे थे। अपने परिवार तक से मिलना-जुलना उन्होंने बिल्कुल बन्द कर दिया था। कमरे में एक पर्दा लगा था। पर्दे की आड़ में ही सब खान पान का सामान रख दिया जाता था और दूसरे दिन खाली बरतन उठा लिये जाते थे। कहते हैं कि देवी दुर्गा में उनकी परम श्रद्धा एवं भक्ति थी और वे इस प्रकार एकांत जीवन के शांतिपूर्ण क्षणों में मां दुर्गा का आह्वान कर रहे थे। वे शक्ति के साधक थे। और जब कोई आपत्ति उनपर आती या वे किसी नये कार्य का श्रीगणेश करते तो दुर्गा की पूजा अवश्य करते थे, इसी लिए अनेक अंधविश्वासियों ने यह समझा कि उनके अचानक ही तिरोहित हो जाने में दैवी दुर्गा का हाथ जरूर है। पर जो नयी रोशनी के थे उन्होंने कुछ और ही अन्दाज लगाये। कहते हैं कि सुभाष बाबू एक गूंगे, बहरे पठान

का रूप धारण करके काबुल पहुंचे। उनकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी। पेशावर से उनके साथ एक साथी और हो लिया था, जिसने उनके दुभाषिये का काम किया। काबुल पहुंचने पर अफगान गुप्तचर विभाग के एक सदस्य ने उनसे पूछताछ करनी चाही, किंतु सुभाष बाबू के साथी ने पुलिसवाले के मन में यह विश्वास बिठा दिया कि यह एक बहरा और गूंगा पठान के सिवा कोई नहीं। तथापि सुभाष बाबू को उस पुलिस वाले को खुश करने के लिए अपने हाथ की घड़ी दे देनी पड़ी। काबुल में सुभाष बाबू एक गंदी सी सराय में जा ठहरे। किन्तु वहां भी अपने को निरापद न समझकर उन्होंने श्री उत्तमचंद नामक एक भारतीय व्यापारी के यहां शरण ली, जिसे बाद में अफगान सरकार द्वारा निर्वासित कर दिया गया और जो भारत पहुंचने के दूसरे ही दिन पेशावर में भारतीय खुफिया पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया।

सुभाष बाबू काबुल से मास्को जाना चाहते थे। किंतु युद्ध की परिस्थितियां बदल जाने और ब्रिटेन और रूस की मैत्री की निकट भविष्य में ही सम्भावना के कारण सोवियत सरकार ने सुभाषबाबू को रूस आने की अनुमति देने में असमर्थता प्रकट की। उधर जब काबुल स्थित जर्मन दूतावास को यह पता चला कि भारतीय राष्ट्रीय महासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष भारत से बाहर निकल कर किसी निरापद स्थान पर पहुंच जाना चाहते हैं तब उसने तत्काल इस सम्बंध में बर्लिन के परराष्ट्र विभाग से पत्र व्यवहार किया और सुभाष को भी जर्मनी पहुंचने के लिए तैयार कर लिया। पर सुभाष बाबू को काबुल से बर्लिन भेजना सहज नहीं था और किसी भी समय सब रहस्य के प्रकट हो जाने की आशंका बनी हुई थी। अन्त में काबुल में जर्मनों ने एक चाल चली। बर्लिन यात्री एक जर्मन को रोक लिया गया और उसका पासपोर्ट सुभाष

बाबू को लेकर उन्हें रूस होकर बर्लिन रवाना कर दिया गया। कहते हैं कि १९४२ के मार्च के प्रथम सप्ताह में वे बर्लिन पहुंच गए थे।

सुभाष बाबू ने बर्लिन पहुंचते ही युद्ध पत्र का अध्ययन तेजी से शुरू कर दिया। उनका सारा समय प्रायः जर्मन युद्ध-अधिकारियों से सलाह मशविरा करने में बीत जाता था, एक बार वे जर्मन युद्ध समिति से बातें करने में व्यस्त थे कि उनके पास का फोन धड़क उठा। उन्होंने रिसीवर उठाया और पूछा—"कौन?" उत्तर मिला—"एक अमेरिकन पत्रकार। आपसे भेंट करना चाहता हूं।" सुभाषबाबू ने उसे तीन दिन बाद का समय दिया। भेंट में जो कुछ बातें हुईं, उसका विवरण ब्राडकास्ट करते हुए अमेरिकन पत्रकार ने सुभाष बाबू के प्रति निम्न हार्दिक उद्गार प्रकट किये —

"मैं सुभाष बोस से मिलने गया। मिलने से पूर्व मुझे जर्मन अफसरों के कारण अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अत्यन्त कड़ी पूछताछ और जांच पड़ताल के बाद मुझे अन्दर प्रवेश की आज्ञा मिली। अन्दर पहुंचते ही मैं स्तम्भित रह गया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मैं भारतीय वेश से आवृत किसी ग्रीक देवता के सम्मुख उपस्थित हूं। श्री बोस मुस्कराये और उन्होंने मेरा स्वागत किया। ऐसा मधुर हास और ऐसा निष्कपट स्वागत मेरे जीवन में एक अभूतपूर्व वस्तु थी।

"बहुत समय पूर्व लास एंजेल्स के एक भारतीय अध्यापक के घर मैंने बुद्ध की प्रस्तर मूर्ति देखी थी। मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे मैं साक्षात बुद्ध के सामने बैठा हूं। उन्होंने मुझसे हाथ मिलाया और मुझे लगा जैसे मेरी अंगुलियों की नसों में हजारों वर्ष पुरानी भारतीय संस्कृति का जादू बिजली की

तरह भरता जा रहा है।

"मुझे ईर्ष्या हुई कि मैं एक हिन्दुस्तानी क्यों न हुआ। बोस जैसा नेता पाकर मुझे मन कुछ मिल गया होता।'

जर्मन युद्ध-प्रणाली और सैनिक संगठन के गम्भीर अध्ययन और भारत को स्वतन्त्र करने की उनकी हृदयवर्ती योजना के इस स्वप्न-काल में ही बर्लिन और हैम्बर्ग के बीच एक सनिक शिविर में श्री सुभाष की जर्मन फ्यूहरर से भेंट हुई। और उसी दिन सायंकाल जर्मन परराष्ट्र विभाग की ओर से श्री सुभाष बोस को 'फ्यूहरर आफ इण्डिया' की उपाधि से विभूषित किया गया। अखबारों में उनके बड़े-बड़े फोटो निकाले गए और फ्यूहरर से उनकी मुलाकात का पूरा वृत्तान्त, शब्द-चित्र और जीवन कथा प्रकाशित की गई। सुभाष बाबू जर्मनी के लिए नये नहीं थे। पहले भी वे जर्मनी आये थे और वहां के अधिकारीवर्ग से भेंट कर चुके थे, पर इस बार जो योजना—जो स्वप्न वह लेकर आये थे, उसने जर्मन राष्ट्र की दृष्टि में उन्हें आसमान पर पहुंचा दिया। उक्त घटना के दो दिन बाद ही जब वे बर्लिन से हैम्बर्ग पहुंचे तो स्टेशन पर दर्शनार्थी जर्मनों का सागर उमड़ रहा था। हैम्बर्ग के मेयर ने उनकी गाड़ी का दरवाजा स्वयं खोलकर उनको सम्मान प्रदान किया। अभी वे गाड़ी से उतर कर बाहर आये ही थे कि स्थानीय नाजी पार्टी के सेक्रेटरी ने उनसे भेंट की और कहा—'क्या आप हमारी पार्टी की सभा में भाषण देना पसन्द करेंगे'। सुभाष बाबू जर्मनी में नाजीवाद या जर्मनी की अपनी समस्याओं में उलझने नहीं आये थे। वे तो भारत को आजाद करने के स्वप्न के पूर्ति में ही दुनिया भर की खाक छान रहे थे। इसलिए उन्होंने एकदम उत्तर दिया—"नहीं, मैं किसी दल [illegible] में हो रही सभा में भाषण देने में असमर्थ

हूँ। यद्यपि मुझे जर्मन जनता से समस्त भारतीय समस्या का रखना है, तथापि मैं आप की पार्टी की सभा में सम्मिलित नहीं हो सकता।"

अगले दिन जब हैम्बर्ग कारपोरेशन की ओर से आपका स्वागत किया गया तो सभास्थल में स्वस्तिक झण्डों की बगल में तिरंगे झण्डे भी लहरा रहे थे और जर्मनी की तूफानी फौज के स्वयंसेवकों ने अपनी टोपियों पर तिरंगे बैज लगाये हुये थे। सभा की कार्यवाही के प्रारम्भमें जर्मनी के राष्ट्रीय गीत के अलावा 'वन्देमातरम्' का भी गान किया गया। मेयर ने उपस्थित जन समुदाय से श्री सुभाष का परिचय करते हुए कहा—

'मैंने वर्षों पहले श्री सुभाष को वियना में देखा था, किन्तु तब वे केवल सुभाष थे, आज वे 'फ्यूहरर आफ इण्डिया' हैं।

मानपत्र का उत्तर देते हुए श्री सुभाष ने मेयर के उपर्युक्त कथन का प्रतिवाद किया और कहा—"वर्षों पहले नहीं, अपितु जन्म से, वियना में ही नहीं अपितु प्रत्येक जगह मैं केवल स्वाधीनता संग्राम का एक सिपाही मात्र रहा हूँ, वही अब भी हूँ, न उससे कम न उससे अधिक।,

जर्मनी रहते हुए वे स्टालिनग्राड के मोर्चे पर भी गए और इतिहास के उस अभूतपूर्व और महा विकराल संग्राम को अपनी आँखों से देखा। इसीबीच में इटली के तानाशाह बेनितो मुसोलिनी और विदेशमंत्री काउण्ट सियानो से भी भेंट की।

यूरोप के रणमंच पर स्वतन्त्रता की रक्षा तथा शक्ति व अधिकार की प्राप्ति के इस भीषण संघर्ष को देखकर भारतमाता को स्वतन्त्र करने की जो साध उनके हृदयमें वर्षों से उद्बुद्ध हो रही थी उसकी पूर्ति के साधन

की प्रेरणा उन्हें मिल गई। यह तो उन्हें युद्ध के आरम्भ काल में ही विश्वास था कि भारतवर्ष युद्ध की परिस्थिति का लाभ उठाकर किसी विदेशी सत्ता की सहायता से गुलामी का तौक उतार कर फेंक सकता है पर विश्वास को क्रियान्वित करने का अवसर उन्होंने अब समझा। इन्होंने इस अवसर का चूकना उचित न समझा। जर्मन सरकार ने भी इस कार्य में उनका सहयोग दिया और उन्होंने मातृ-भूमि को स्वतन्त्र करने के अपने महान स्वप्न को चरितार्थ करने के मार्ग में प्रथम चरण जर्मनी में आजाद हिन्द फौज की स्थापना के रूप में रक्खा। लीबिया और लिबिया के अन्य स्थानों से युद्ध-बन्दी बनाये गये बहुत से भारतीय उस समय जर्मनी के नजरबन्द कैम्पों में कैद थे। जर्मन सरकार ने सुभाष बाबू को यह सुविधा प्रदान कर दी कि वे उन सब युद्धबन्दी सैनिकों को अपनी आजाद हिंद फौज में सम्मिलित कर सकते हैं। सुभाषबाबू की इस जर्मनी स्थित आजाद हिंद फौज में कितने सैनिक थे और उसके पास क्या क्या साधन-सामग्री थी इसकी कोई अधिकृत विस्तृत रिपोर्ट प्राप्त नहीं हो सकी है, तथापि जर्मनी की पराजय के बाद उस सेना के जो भारतीय सदस्य भारत में लाये जाकर दिल्ली के समीपवर्ती बहादुरगढ़ शिविर में रखे गये, उन्होंने यहां से मुक्त होने के बाद जो वक्तव्य दिया है उससे पता चलता है कि उनकी संख्या १२००० से कम न थी, उनका प्रधान शिविर जर्मनी के क्वेसडन नामक स्थान पर था और उसमें ८ बटालियन थे।

एक बार हिटलर ने आजाद हिन्द सैनिकों तथा जर्मन सैनिकों की एक सम्मिलित रैली में भाषण करते हुए कहा—"जर्मन सैनिको और स्वाधीन भारतीयो! मैं स्वतन्त्र भारतीय सरकार के अस्थायी प्रधान हिज एक्सीलेंसी हर सुभाषचन्द्र बोस का स्वागत करता

हैं। ये यहाँ उन हजारों भारतीयों का नेतृत्व करने आये हैं जो अपने देश को प्यार करते तथा उसे स्वतन्त्र करना चाहते हैं। उन्हें सम्राट् या आज्ञा देना मेरे लिए उचित नहीं है, क्योंकि अब ये एक स्वाधीन सरकार के सैनिक हैं। जर्मन सैनिकों और नागरिको ! आप इस बात स्मरण रखें। आपके फ्यूहरर पर तो केवल ८ करोड़ जनता की हित चिन्ता का भार है पर इन लोगों ने अपने देश के ४० करोड़ लोगों के हितों की रक्षा की शपथ ग्रहण की है। अतः आप अपने फ्यूहरर की भाँति ही इस नई सरकार और इसके प्रधान के प्रति पूर्ण सम्मान प्रगट कर और सहयोग दें।'

जर्मनी के प्रसिद्ध फील्ड मार्शल रोमेल ने भी एकबार इस आज़ाद हिन्द फौज का निरीक्षण किया और यह प्रकट किया—"संसार में भारत के आन्तरिक मतभेदों का ढिंढोरा पीटा जाता है, किन्तु मैं इन सिपाहियों में हिन्दू मुसलमान को अलग-अलग नहीं पहिचान सकता। वस्तुतः ही उनका भोजन, पोशाक, भाषा और आकृति समान ही है।"

इस प्रकार भारतवर्ष की भूमि से हजारों मील दूरी पर एक सर्वथा विदेशी स्थान में भारतमाता की बन्धन मुक्ति के महान नाटकीय उपाख्यान की भूमिका शुरू हो गई। सूत्रधार नेताजी सुभाष बोस ने जिस शान और निराली अदा के साथ नाटक का उद्घाटन किया, उसका डंका जर्मनी के कोने-कोने में बज उठा। बड़े बड़े नामी सेनापतियों और प्रकाण्ड राजनीतिज्ञों ने एक गुलाम देश के बहादुर सिपाही के इस अद्भुत कारनामे को बड़े आश्चर्य और प्रशंसा के साथ देखा। जर्मनी एक स्वतन्त्र देश था इस लिये वह स्वतन्त्रता के मूल्य और स्वतन्त्रता की

भावना की कदर करना जानता था। इसी का परिणाम यह हुआ कि एक विदेशी भूमि पर भी गुलामी के खिलाफ किया गया यह संगठित सैनिक विद्रोह अपनी पूरी शानबान के साथ चलने लगा।

आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व भी ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ इसी प्रकार के एक नाटक की रचना की गयी थी। किन्तु जहां यह नाटक सात समुद्र पार किया जा रहा था, वहां उसका बीजारोपण भारत के शाही नगर दिल्ली में हुआ था। मुगल सल्तनत के अंतिम सम्राट बहादुरशाह उस समय तख्तनशीन थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी सौदागर से शासक बन गयी थी और कम्पनी के अधिकारीगण इस इस संस्था को जहां अपनी स्वार्थपूर्ति का साधन बनाये हुये थे, वहां उन्होंने अपनी कूटनीति द्वारा हिंदुस्तान के राजाओं और नवाबों के साथ इस प्रकार की सन्धियां कर ली थीं कि कम्पनी एक व्यापारी संस्था न रहकर उनकी एक 'दयालु संरक्षक' बन गयी थी। हिन्दुस्तान की धन दौलत पहली बार एक बाकायदा योजना के अन्तर्गत इस देश से बाहर जाने लगी। हिंदुस्तान के शासक कमजोर और ऐशपरस्त हो चुके थे, किंतु फिरंगियों की कूटनीति को वे भांप गये और बूढ़े मुगल बादशाह के नेतृत्व में सारा देश अपनी आजादी के लिए उठ खड़ा हुआ। नाना फड़नवीस, तांतिया टोपी और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के नेतृत्व में हिन्दू-मुसलमान सब एक साथ विद्रोह करने लगे। कम्पनी की हुकूमत समाप्त हो जाती, किन्तु भारत के दुर्भाग्य और अंग्रेजों की कूटनीति ने इस विद्रोह को सफल न होने दिया और पंजाब के सिखों की मदद से १८५७ की इस स्वातन्त्र्य जागृति को पूरी तरह कुचल दिया गया। तब से गुलामी की जो जंजीर हिन्दुस्तान के गले में पड़ी, वह अब तक वहीं कायम है। इस मध्यवर्ती काल में पंजाब, बंगाल, युक्तप्रान्त

और महाराष्ट्र में अनेक विप्लवों ने जन्म लिया, परन्तु अच्छी भावना से किये जाने पर भी आतंक फैलाने से अधिक वे कुछ न कर सके। इन विप्लवों का सञ्चालन कुछ व्यक्तियों की कारवाइयों तक ही सीमित था और उनके काम कभी कभी बिजली की चमक की तरह चमक मारकर विलुप्त होते रहे।

सन् १८८५ में, जब कि भारत में छोटे-छोटे विप्लव सिर उठा ही रहे थे श्री ह्यूम के नेतृत्व में कांग्रेस की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य वैधानिक आधार पर संघर्ष करके भारत के लिए कुछ सुविधाएं प्राप्त करना था। सन् १९०८ की सूरत कांग्रेस तक इस संस्था ने कोई विशेष कार्य नहीं किया। उसका सारा काम कुर्सियों पर बैठ कर दिमागी जिम्नास्टिक और प्रस्ताव पास करने तक सीमित रहा।

इसके बाद कांग्रेस में तिलक, गोखले और एनी बिसेण्ट का युग रहा और उन्होंने अपने कार्यों द्वारा कांग्रेस के निष्क्रिय शरीर में एक नया जीवन फूंक दिया। १९२० में महात्मा गांधी ने, जो कि दक्षिणी अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों के लिए किये गये संघर्ष में विजय लाभ करके लौटे थे और जिनके साहस, सहिष्णुता और धैर्य की घटनायें कहानियां बन कर देश के दूर दूर कोने में फैल गई थीं, कांग्रेस की बागडोर संभाली। उनके पास नये विचार, नयी योजनाएं और दक्षिणी अफ्रीका में किये गये अहिंसक असहयोग के सफल परीक्षण थे। १९१९ में रौलट एक्ट के खिलाफ उन्होंने जिस अहिंसक प्रतिरोध का संगठन किया था उसकी शक्ति और परिणामों की सूचना देश को मिल चुकी थी। इससे पूर्व लोकमान्य तिलक और गोखले आदि ने कांग्रेस का नेतृत्व करते हुए देश में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ भावना को अवश्य उद्बुद्ध कर दिया था, पर उनका कार्य यहीं तक ही सीमित रहा था। उनके समय में

जो हड़ताल, बमकाण्ड और अन्य सरकार विरोधी कार्य हुए वे शहरों की सीमा पार करके गावों तक नहीं जा सके। उनका प्रमुख कार्य अपने अधिकारों के लिए संघर्ष, और देश में स्वतन्त्रता की भावना की जागृति ही रहा, पर वे देश को इसके लिए कोई नवीन योजना, विचार और कार्यप्रणाली नहीं दे सके। गांधीजी के कांग्रेस में प्रविष्ट होते ही भारतीय स्वतन्त्रता के संघर्ष में एक नये युग का श्रीगणेश हुआ। उन्होंने सत्याग्रह को अपना अस्त्र बनाया और अहिंसा को ढाल। गत २५ वर्षों में आज़ादी के लिए किए गए भीषण संघर्ष में उन्होंने इन्हीं दोनों चीजों से अनेक बार नौकरशाही के दांतों चने चबवा दिए हैं और राजनैतिक जागृति और अहिंसक विद्रोह का झण्डा भारत के सुदूरतम गावों तक में लहरा दिया है।

अहिंसक संघर्ष के इन २५ वर्षों में भारतमाता की आन पर मर मिटने की आकांक्षा रखने वालों ने समय समय पर हिंसक विद्रोह भी खड़े किये।

यह बात स्मरण रखने योग्य है कि उपर्युक्त प्रत्येक घटना के पीछे क्रान्तिकारी युवकों की टोलियों की टोलियों का हाथ था। इन टोलियों में न केवल युवक अपितु युवतियां भी थीं और वे अपने पर सौंपे गए कार्य को जान पर खेल कर भी पूरा करती थीं।

सन १९३५ के नवीन शासन विधान के अनुसार, कांग्रेस द्वारा देश के ११ प्रांतों में से ७ में अपने मन्त्रिमण्डल स्थापित किए जाने तक ब्रिटिश शासन और प्रभुत्व के विरुद्ध असंगठित विद्रोह की चिंगारियां बराबर फूटती रहीं।

आखिर इन आतंकवादी प्रवृत्तियों का युग भी समाप्त होगया। पर हिन्दुस्तान की आज़ादी के संघर्ष पर वह अपनी कुर्बानी के जो छाप

दाग छोड़ गया है वह सदा अमिट रहेगा। ये पवित्र बलिदान व्यर्थ नहीं गए। देश की भावी संतति पर उनकी निष्कपट, साहसिकता और देश के नाम पर सब कुछ होम कर देने की भावना का जो प्रभाव पड़ा है उसी का यह फल है कि आज गांधीवाद के इस अहिंसक युग में भी भारतमाता की मुक्ति के लिए किए गए संगठित सशस्त्र विद्रोह की एक ऐसी गौरवपूर्ण गाथा लिखी जा रही है कि उसकी उपमा अब तक के भारतीय इतिहास में ढूंढे भी नहीं मिल सकती।

१

ब्रिटिश प्रभाव की होली

मलाया की राजधानी के अभेद्य एवं दुर्जेय दुर्ग पर जापान का सूरज-मुखी झण्डा लहरा रहा था और सुदूरपूर्व के आंगन में ब्रिटिश प्रताप और शौर्य की चिता धू धू करके जल रही थी। १५ फरवरी १९४२ की यह घटना है, जो इतिहास में सदा एक अमर याद बनकर रहेगी। सम्राट को ईश्वर का दूत मानने वाली जापान की दुर्धर्ष सेनायें अपने सामने के दूर-दूर तक फैले समुद्र व आसमान को चीरती और एक के बाद एक द्वीप को फतह करती हुई अप्रतिहत वेग से सारे दक्षिणी एशिया पर छा रही थीं। ७ दिसम्बर को जापान के युद्ध में कूदने के बाद अभी ३ मास भी नहीं बीत पाये थे कि पर्ल हार्बर, गुआम, वेकद्वीप, हांगकांग मनीला, पेनांग आदि सब प्रदेश एक एक करके ब्रिटेन के हाथ से छीने जा चुके थे और थाईलैंड से बढ़ती हुई जापानी सेनाएं एक ओर मलाया में और दूसरी ओर मोगुई, तिनाय और मौलमीन पर अपना झण्डा फहराती हुई बर्मा की ओर बढ़ रही थीं। पेगू और सितांग की घाटियों में जापानी ही जापानी छाये हुए थे। २० दिसम्बर को जापान के 'आदम-बमों' ने सिंगापुर के बन्दरगाह पर स्थित 'रिपल्स' और 'प्रिंस

प्रिंस ऑफ वेल्स' जैसे भीमकाय ब्रिटिश युद्धपोतों पर कहर बरपाकर के सम्पूर्ण सुदूरपूर्व में एक धमाका कर दिया था और ब्रिटेन की साम्राज्य की सारी शान और शौकत, जिसके डंके कभी दुनिया के हर कोने में बज रहे थे, समुद्र के गहरे और नमकीन पानी के साथ बही जा रही थी। ब्रिटिश शेर ने पहली बार मुंह की खाई थी और उसे अनुभव हो रहा था कि सुदूरपूर्व के इस वन में केवल काले पीले गोरिल्ले नहीं बसते हैं जिन पर अनन्त काल तक शासन करने की सुखद कल्पना का यह स्वप्न पला था। वह सम्मोहनी आघात के एक ही प्रहार से काफूर हो गई। सिंगापुर का वह दुर्ग, जिसके निर्माण में ३ करोड़ पौण्ड (लगभग ४० करोड़ रुपया) व्यय किये गए थे और जिसकी अजेयता के चर्चे हर जबान पर थे, खाक में मिला दिया गया था और उसका नाम बदल कर शोनान (दक्षिण का प्रकाश) कर दिया गया था।

ब्रिटिश अफसर, औरतें और बच्चे विमानों में बैठकर और भारतीय सैनिकों व नागरिकों को उनकी किस्मत पर छोड़कर सुरक्षित स्थानों में भागे जा रहे थे। आकाश विमानों की गड़गड़ाहट से गुंजरित था। कर्नल हण्ट हजारों भारतीय सिपाहियों को जापानी सेनापति मेजर फुजिवारा के हाथ सौंप कर भाग चुके थे। सिंगापुर बन्दरगाह के पतन के साथ ही १५००० ब्रिटिश, १३००० आस्ट्रेलियन तथा ६२००० भारतीय सेनाओं ने आत्मसमर्पण कर दिया था और इस प्रकार मलाया की ५० लाख जनता जापानियों के हाथ आ चुकी थी।

उस समय सिंगापुर के पतन के बाद २३ अप्रैल, १९४२ को तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री चर्चिल ने ब्रिटिश लोक सभा के गुप्त अधिवेशन में दिए हुए एक ऐतिहासिक भाषण में कहा था—'इस पराजय का लांछन आस्ट्रेलियन लोग भारतीय फौजों पर लगाते हैं तथा

अन्य सूत्रों से इसकी बदनामी आस्ट्रेलियनों के गले मढ़ी जाती है। १८ वें डिवीजन की कायरता आलोचना का विषय बन गई है इस प्रकार एक दूसरे पर आक्षेप करने की कोई सीमा नहीं रही है।

"जापानी इस समय भारत पर भी चढ़ाई कर सकते हैं। यदि जापानी भारत के एक विशाल भू भाग को विदलित करने, कलकत्ता, मद्रास पर कब्जा जमाने तथा रक्षात्मक साधन हीन भारतीय नगरों को अपनी अधाधुंध बमबारी से ध्वस्त करने के लिए अपनी शक्ति को इस ओर केन्द्रित करना चाहें तो इस दिशा में अब उनकी सफलता के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह गया है।"

ब्रिटेन की शक्ति व प्रभाव की जो छाप मलायावासियों के दिलों में अंकित थी वह मिटती जा रही थी और उनका सोया हुआ अभिमान धीरे धीरे अपना सिर उठा रहा था। अभी तक उन्होंने गुलामी [illegible] पद पद पर अपमान का ही अनुभव किया था। इस नये प्रकाश [illegible] देखकर जैसे उनमें नवीन जीवन दौड़ गया।

मलाया अपने टिन के उत्पादन तथा रबड़ की खेती के [illegible] में विख्यात है। दुनिया का १८ प्रतिशत टिन और ५८ [illegible] यहीं से प्राप्त किया जाता है। मलाया की इस [illegible] के पीछे प्रवासी हिन्दुस्तानियों और वहाँ के अपने [illegible] हाथ है, इसकी कल्पना सहज नहीं है। इसके लिए [illegible] पर्याप्त होगा कि तत्कालीन मलाया के [illegible] की [illegible] आराम के साधनों के [illegible]

पसीने के दाग लगे हुए थे, परन्तु इतना सब कुछ करने के बाद भी वहां के प्रवासी भारतीयों की अवस्था दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों से अच्छी नहीं थी। जाति, धर्म व वर्ण-विद्वेष की भावना पूर्ण रूप से विद्यमान थी। जिस मलाया का उन्होंने अपने खून से निर्माण किया था उसी के मुक्त उपभोग में वे स्वतन्त्र नहीं थे। केवल काले होने की वजह से उन्हें पद पद पर लांछित और अपमानित होना पड़ता था। मलाया के शासन में उनकी कोई पूछ नहीं थी और वहां के बड़े बड़े होटलों, और अपनी शानो शौकत से चौंधिया देने वाले आमोद प्रमोद और विलास गृहों के द्वार हिन्दुस्तानियों के लिए बन्द थे। सिंगापुर का 'स्नान क्लब' केवल गोरी चमड़ी वालों के लिए सुरक्षित था। उसमें भारतीयों के प्रवेश की इजाजत नहीं थी। और यदि कोई भारतीय अफसर जोर लगाकर, मोपेगैबड़ा करके अन्दर प्रवेश भी पा जाता था तो भी उसे एक अस्पृश्य पदार्थ समझकर जलागार में स्नान करने की इजाजत तो बिल्कुल नहीं दी जाती थी।

यह स्थिति असह्य थी, पर वे विवश थे। सिर उठाने का मौका न था, पर अब जापान द्वारा ब्रिटिश सेना को पराजित व मुंह छिपाकर भागते देखकर उनकी नसों का ठण्डा पड़ा खून, खौल उठा था और विद्रोह एवं प्रतिशोध की एक भावना मलाया के इस कोने से उस कोने तक जग उठी थी।

ऐसे में एक दिन जापान के सैनिक प्रधान शिविर के मेजर फुजिहारा ने मलायावासी कुछ हिन्दुस्तानी नेताओं को आमन्त्रित किया और उनके सामने यह स्पष्ट किया कि—'इंगलैण्ड की सैनिक शक्ति समाप्त हो गई है और आपके लिए यह समय आ गया है कि आप उठें

और अपने देश की आजादी के लिए कदम बढ़ायें। जापान आपकी हर तरह से सहायता करने को तैयार है। यद्यपि भारतीय ब्रिटिश प्रजा हैं और इस नाते से भी जापान के शत्रु कहे जा सकते हैं, पर जापानी इस बात को जानते हैं कि आप स्वेच्छा से ब्रिटिश प्रजा नहीं हैं। इसलिए यदि आप ब्रिटिश नागरिकता का परित्याग करदें तो हम आपसे मित्र वत् व्यवहार करने के लिए तैयार हैं। आप लोग 'इन्डिपेन्डेंस लीग' का निर्माण कीजिए। मैं इस कार्य के लिए सब सुविधाएं दे सकूंगा।"

मेजर फुजिहारा के इस प्रस्ताव से हिन्दुस्तानी नेताओं की बाछें खिल गईं। उन्हें और क्या चाहिए था। वे तो इस प्रतीक्षा में ही थे कि भारतमाता की मुक्ति के लिए कोई सबल राष्ट्र उनकी शस्त्रास्त्र आदि से सहायता करे, पर फिर भी वे एक दम असावधान नहीं थे। वे स्वामित्व का परिवर्तन नहीं चाहते थे। यद्यपि जो जापानी मलाया में आए थे वे भारतीयों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण थे, पर इस बात की कोई गारन्टी नहीं थी कि भविष्य में वे भी गौरांग महाप्रभुओं की ही तरह व्यवहार नहीं करने लगेंगे। इसलिए भारतीयों के दिल में मेजर फुजिहारा के प्रस्ताव से जहां प्रसन्नता का संचार हुआ वहां उनकी ईमानदारी के विषय में शंका भी उत्पन्न होगई। वे नहीं चाहते थे कि ब्रिटेन के खिलाफ वे जापान के साधन बनें। वे तो अपने देश की आजादी के लिए जान कुर्बान करना चाहते थे। किसी के साम्राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए वे अपना खून बहाना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने मेजर फुजिहारा को कहा कि वे परस्पर विचार विनिमय करके फिर उत्तर देंगे।

२१ फरवरी, ४२ को भारतीय नेताओं की ओर से एक लिखित उत्तर मेजर फुजिहारा को मिला। उसमें लिखा था कि विषय इतना

नाजुक है कि इस पर सम्पूर्ण मलाया की भारतीय जनता के नेताओं से परामर्श लेना आवश्यक है। उन्होंने मेजर फुजिहारा को लिखे पत्र में मलाया की सेंट्रल इंडियन एसोसिएशन का भी जिक्र किया और प्रार्थना की कि उसके अध्यक्ष श्री एन० राघवन को उक्त विषय पर परामर्श करने के लिए सिंगापुर बुलाया जाय।

क्रांतिकारी श्री रास बिहारी बोस ने भारत से भागकर जापान में शरण ली थी और इस समय वे टोकियो में थे। उन्होंने इस जन जागरण का आश्चर्य और आनन्द देखा। १६१५ की स्मृतियां हरी हो उठीं। उन्हें लगा जैसे भारत को मुक्त देखने का उनका स्वप्न चरितार्थ होने को है। उन्होंने टोकियो में एक सम्मेलन करने की योजना बनाई और २८ फरवरी को उन्होंने उसमें मलाया के सब नेताओं को सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया।

यह वह समय था जब कि बर्मा के जंगलों और पहाड़ों को फान्दती हुई जापानी सेनाएं भारतीय सीमा की ओर बढ़ी चली आ रही थीं। ७ मार्च को बर्मा की राजधानी रंगून और ६ मार्च का पेगू का पतन हो गया था।

इधर १० मार्च को शानान में भारतीयों का एक बृहत सम्मेलन हुआ। मलाया के प्रत्येक प्रदेश के प्रतिनिधि इसमें सम्मिलित हुए। थाईलैण्ड से भी कुछ प्रतिनिधि आये। श्री रास बिहारी बोस ने टोकियो सम्मेलन में सम्मिलित होने का जो आमन्त्रण सिंगापुर के भारतीय नेताओं के पास भेजा था उस पर कांग्रेस में विचार किया गया। जापानी लोग इस बात के बड़े इच्छुक थे कि उक्त सम्मेलन हो और भावी कार्य की रूपरेखा निर्धारित कर ली जाय। पर मलाया के भारतीय नेताओं ने धीरे धीरे कदम बढ़ाना ही श्रेयस्कर समझा। उन्होंने

यह निर्णय किया कि टोकियो में एकशिष्टमण्डल भेजा जाय जो जापान सरकार की सम्पूर्ण गतिविधि और इरादों का पता लगाये। जापान की सद्भावना और ईमानदारी की परीक्षा के लिये ये स्थानीय जापानी सेनापतियों पर भारतीय बंदियों को जेल से मुक्त करने के लिये जोर डालते रहे।

उन दिनों सिंगापुर में जो भारतीय बन्दी बना लिये गये थे उनमें आपस में बड़ा विवाद चला करता था। उनमें से अधिकांश का यह मत था कि यदि जापानियों ने उन्हें अपने हाथ का खिलौना बनाना चाहा तो वे साफ इन्कार कर देंगे, परन्तु यदि उन्होंने भारतमाता की ब्रिटिश साम्राज्य की बेड़ियों से मुक्ति के लिये सेना सगठित करने में सहायता की तो वे खुशी खुशी स्वीकार करेंगे। उनमें यह भावना धीरे-धीरे दृढ़ होती जा रही थी कि एक सैनिक के नाते निष्ठावान रहने की जो शपथ उन्होंने ग्रहण की है वह देश के प्रति है—किसी व्यक्ति विशेष के प्रति नहीं। इस अवसर पर ही एक बार मेजर फुजिहारा कुछ भारतीय अफसरों के साथ आत्म समर्पित बन्दी सैनिकों के सम्मुख उनसे यह अपील करते गये कि वे जापानी सेना के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर अपने देश की आजादी के लिये लड़े। तब कै० मोहन सिंह ने यह कहा कि हम आजाद हिंद फौज का निर्माण कर रहे हैं और हम भारत की आजादी के लिये ही लड़ाई लड़ेंगे। आप सब लोगों को उसमें शामिल होना चाहिये। बाद में कप्तान शाहनवाज, कप्तान सहगल व लें० ढिल्लों भी सैनिकों से अपीलें करते रहे। इससे पूर्व भी १५ फरवरी १६४२ को जब कर्नल हंट ने मेजर फुजिहारा के हाथ बन्दी सौंपा था तब मेजर फुजिहारा ने जापान के पास राशन की कमी के कारण कहा था— "जापान सरकार आपको बन्दी रखने के लिए तैयार नहीं। अब आप

सब आज़ाद हैं। मैं आप सबको कप्तान मोहनसिंह के हवाले करता हूँ, जो सुप्रीम कमाण्डर होंगे और आप सबको उनका हुक्म मानना पड़ेगा।'

इसके बाद कप्तान मोहनसिंह ने सैनिकों को भाषण देते हुए कहा-हम एक आज़ाद फौज बनायेंगे, जो कि हिन्दुस्तान को आज़ाद कराने के लिए लड़ेगी। क्या आप सब इसके लिये तैयार हैं? इस पर सबने दोनों हाथ ऊपर उठाकर पगड़ियाँ उछालीं और प्रसन्नता प्रकट की।

२३ मार्च को सिङ्गापुर का पतन हो गया और उसके ५ दिन बाद ही २८ मार्च को टोकियो में श्री रासबिहारी बोस की अध्यक्षता में टोकियो सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। जापान, मलाया, चीन और थाईलैंड के अनेक भारतीय उसमें सम्मिलित हुए।

इसी बीच में एक घटना घट गयी जिससे सारे भारतवर्ष में मातम छा गया। लोगों ने आश्चर्य एवं दुःख के साथ सुना व पढ़ा कि सुभाष बाबू एक विमान-दुर्घटना के शिकार हो गए। समाचार पत्रों ने काले बार्डर में इस घटना के दुःखमय समाचार को प्रकाशित करके उनके प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं, जीवन कथायें छापीं और नेताओं ने उनके अद्भुत त्याग एवं शौर्य के प्रति अपने हार्दिक उद्गार प्रकट किये। डोमेई सम्वाद समिति द्वारा यह समाचार प्रचारित किया गया कि थाईलैण्ड से जो विमान टोकियो-सम्मेलन के लिए भारतीय प्रतिनिधि लेकर आ रहा था वह रास्ते में ही गिर कर टूट गया, जिसके परिणाम स्वरूप श्री सुभाषचन्द्र बोस सहित उसमें के सब यात्रियों की मृत्यु हो गई। पर बाद में उक्त सम्वाद समिति द्वारा ही यह समाचार देने पर सर्वत्र प्रसन्नता की लहर छा गयी कि उस विमान में श्री सुभाष बाबू न होकर श्री स्वामी सत्यानन्द पुरी थे।

टोकियो-सम्मेलन में इण्डियन इन्डिपेंडेंस लीग के निर्माण का निश्चय किया गया और उसका यह उद्देश्य निर्धारित किया गया कि-'यह पूर्ण स्वतन्त्रता और प्रत्येक प्रकार के विदेशी प्रभुत्व हस्तक्षेप और नियन्त्रण से मुक्ति प्राप्त करेगी।' 'आजाद हिंद फौज' के निर्माण तथा जून में बंकोक में पूर्वी एशिया के सब भारतीयों के प्रतिनिधि-सम्मेलन के बुलाने के निश्चय किये गये।

२२-२३ २४ अप्रैल को शोनान में इण्डियन इण्डिपैंडेंस लीग की सब शाखाओं का एक अखिल मलायी सम्मेलन हुआ, जिसमें सब शाखाओं के कार्य के नियन्त्रण के लिये एक केन्द्रीय समिति की स्थापना की गई और स्वास्थ्य, समाज सेवा, डाक्टरी सहायता और राजनीतिक सगठन इत्यादि का निश्चय किया गया। इसका यह परिणाम हुआ कि १० मई १९४२ तक इ डियन इण्डिपेंण्डेंस लीग के कुल सदस्यों की संख्या ६५००० हजार तक जा पहुची और पेनाग, पैराक, केदाह, सेलागोर, नेगरी सेमबिलान, मलाया और जेहोर आदि राज्यों में उसकी शाखायें और ७३ उपशाखायें स्थापित हो गई।

शोनान-सम्मेलन में पूर्वी एशिया के भारतीय प्रतिनिधियों के जिस सम्मेलन का निश्चय किया गया था वह बकोक में १५ जून को आरम्भ होकर २७ जून तक चला। जावा, सुमात्रा, इ डोचीन, बोर्नियो, सबुकुओ, हागकाग, बर्मा मलाया और जापान के भारतीय प्रतिनिधि इसमें सम्मिलित हुए। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें युद्धबंदियों के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया। अब इण्डियन इन्डिपेंडेंस लीग की अधिकृत रूप से स्थापना कर दी गई और उसके विधान को स्वीकार कर लिया गया। उसका आदर्श रखा गया-'एकता, विश्वास और बलिदान एकता से एक झण्डे के नीचे सब भारतीयों का संगठन, विश्वास से

भारतीय स्वतन्त्रता की अविलम्ब प्राप्ति में तथा भविष्य में स्वतन्त्रता की रक्षा की पूर्ति के लिए आज एक बार फिर संगठित था। सम्मेलन में आज का एक और अविस्मरणीय निश्चय करते हुए यह निश्चय किया गया कि उसकी सब प्रवृत्तियां राष्ट्रीय होंगी और उनमें जाति, धर्म व सम्प्रदाय की भावना के लिए कोई स्थान नहीं होगा। उसका सम्पूर्ण शासन और कार्यपद्धति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उद्देश्यों के अनुरूप होगी। सम्मेलन में लीग की सशस्त्र समिति के निर्देशन में स्वतन्त्र भारत की स्थल व राष्ट्रीय सेना के रूप में आजाद हिन्द फौज के निर्माण, एवं उसे जापानी सेना के समान स्तर पर प्रतिष्ठित करने का निश्चय किया गया। यह बात स्पष्ट शब्दों में घोषित कर दी गई कि यह सेना भारत स्थित ब्रिटेनियों के साथ युद्ध करेगी तथा भारत की स्वतन्त्रता की प्राप्ति व सुरक्षा के उद्देश्य से प्रयुक्त की जायगी—किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं।

समर-समिति में प्रधान के अतिरिक्त ४ अन्य सदस्यों के नियुक्त किए जाने का निश्चय किया गया और इस निश्चय के अनुसार श्री रास बिहारी बोस उसके प्रथम प्रधान तथा सर्वश्री एन० राघवन, के० पी० के० मेनन, मो० मोहन सिंह और कर्नल जी० क्यू० जिलानी सदस्य निर्वाचित हुए।

सम्मेलन ने यह मांग की कि जापान सरकार यह घोषित करे कि—'ब्रिटिश साम्राज्य से भारत का सम्बन्ध विच्छेद होने के पश्चात् जापान भारत की प्रादेशिक अखण्डता का सम्मान तथा राजनैतिक, सैनिक अथवा आर्थिक विदेशी प्रभाव नियन्त्रण व हस्तक्षेप से मुक्त भारत की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार कर लेगी। किसी भी भारतीय को शत्रु नहीं समझा जायगा और शत्रु सम्पत्ति समझकर उसकी सम्पत्ति जब्त नहीं की जायगी।

काग्रेसके तिरंगे झण्डेके ही इस सम्मेलनमें इन्डियन इन्डिपेंडेंसलीग का झण्डा स्वीकार कर लिया गया और जापान सरकार से यह प्रार्थना की गई कि सुभाष बाबू को पूर्वी एशिया पहुंचने की सुविधाएं दी जाय, जिससे कि वे भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का प्रभावशाली तरीके पर नेतृत्व कर सकें।

इस सम्मेलन का मलायावासी समस्त भारतवासियों पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि सहस्त्रों व्यक्तियों ने आ० हि० फौज व इन्डियन इंडिपैंडेंस लीग में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की। परिणाम यह हुआ कि लीग की सदस्य संख्या १,२०,००० तक जा पहुंची और उसकी शाखाएं २० के स्थान पर अब ४० होगई।

दिनों के बीतने के साथ १९४२ का अक्तूबर मास भी आ पहुंचा, बैंकौक-सम्मेलन में जो प्रस्ताव पास किए गए थे, जापान सरकार का उनके विषय में कोई उत्तर प्राप्त नहीं हो सका था। लीग की संग्राम-समिति प्रथम श्रेणी की भारतीय सेना के निर्माण के लिए जापानी अधिकारियों से बातचीत कर रही थी। श्री सुभाष बाबू के निकट भविष्य में ही पूर्वी एशिया में आने की चर्चा सुनी जाने लगी थी। लीग की अपील के परिणामस्वरूप सहस्त्रों भारतीय नागरिक स्वेच्छासे आ० हि० फौज में सम्मिलित हो चुके थे। उधर संग्राम-समिति ने भी ५६००० युद्धबंदियों में से ५०००० को आ० हि० फौ० में भर्ती कर लिया था। पर लीग की यह प्रवृत्तियां निर्बाध रूप से नहीं चल सकीं। मलाया के जापानी अधिकारियों तथा भारतीय नेताओं के सम्बन्ध बिगड़ने लगे। संग्राम समिति ने जापानी हाई कमाण्ड से मांग की वह 'इवाकुरो किकान' (लीग और जापानी सत्ता के बीच सम्बंध स्थापक विभाग) पर अंकुश रखे और लीग के आजाद हिन्द फौज के संगठन व प्रचार के कार्य को

विरोध रूप से दमन दे। 'इवाकुरो किकन' अपना उद्देश्य सीधा करने के लिए भा० हि० फौज तथा भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का भारत पर जापानी आक्रमण का साधन बनाना चाहता था, पर लीग के अधिकारी मूर्ख नहीं थे। वे इसका अपनी सम्पूर्ण शक्ति से विरोध कर रहे थे और न जापानियों के हाथ की कठपुतली बनने के लिए किसी भी हालत में तैयार नहीं थे।

इस बीच में पनांग का स्वराज्य इन्स्टीट्यूट के कुछ लड़कों को 'इवाकुरो किकन' द्वारा जासूसी के काम के लिये पनडुब्बी द्वारा जबरदस्ती भारत भेजने से जापानियों और भारतीयों के बीच संघर्ष और भी तूल पकड़ गया। इंस्टीट्यूट के सर्वोच्च अधिकारी श्री राघवन ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया कि यह संस्था जापानियों के लिए जासूस तैयार करने का कारखाना नहीं है। और अगर जापानी अपनी इन हरकतों से बाज न आए तो वे संस्था को बन्द कर देंगे। लोगों ने जब श्री राघवन से कहा कि जापानी अधिकारी आपके इस उत्तर से रुष्ट हो जायेंगे तो उन्होंने उत्तर दिया— 'वे मुझे मार ही तो सकते हैं।' अन्त में यह संस्था बन्द भी कर दी गई और जापानियों ने श्री राघवन को उनके अपने ही घर पर नजरबन्द कर दिया। बाद में मलाया की जनता के प्रधारपन से दबाव देने पर उन्हें मुक्त कर दिया गया।

उधर कप्तान मोहनसिंह ने जापान सरकार को यह लिखकर भेज दिया कि अब जापान को इन अभिप्रायहीन घोषणाओं से काम नहीं चलेगा कि भारत में उसका कोई प्रादेशिक हित नहीं है। उसे एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में हमारा सम्मान करना चाहिए और हमें भारत की एक अस्थायी सरकार के निर्माण के लिए अनुमति दे दी जानी चाहिए।

पर संघर्ष की खाई अभी और भी चौड़ी होनी थी। जापानी अधि

कारियों ने लीग से परामर्श किये बिना ही आजाद हिंद फौज को आदेश दे दिया कि वह बर्मा व चटगाव पर आक्रमण करने के उद्देश्यसे सैनिक कूच के लिये तैयार रहे। और इसके लिये एक जहाज भी शोनान के बन्दरगाह पर आ पहुचा, पर लीग की संग्राम समिति दृढ़ थी। उसने स्पष्ट रूप से जापानी अधिकारियों को कह दिया कि वे एक भी सिपाही को बर्मा नहीं भेजेगी। आखिर जहाज को खाली लौट जाना पड़ा। इसके बाद ही ८ दिसम्बर १९४२ को संग्राम समिति के सदस्य कर्नल गिलानी अग्रेजों की ओर से जासूसी करने का आरोप लगा कर गिरफ्तार कर लिया गया।

संग्राम समिति ने इस स्थिति को अत्यत अपमानजनक समझ कर स्तीफा दे दिया और श्री रासबिहारी बोस जापानियों और भारतियों के बीच पैदा होगये इस गतिरोध के अत के लिये जापानी प्रधानमंत्री जनरल तोजो से परामर्श करने टोकियो चले गये। प्रस्थान से पूर्व उन्हों ने लीग की सब शाखा सभाओं को अपना काम तब तक यथापूर्व जारी रखने की अपील की जब तक जापान सरकार की ओर से इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट घोषणा नहीं कर दी जाती। जापानी अधिकारियों से भी उन्होंने इस मध्य में कोई हस्तक्षेप करके स्थिति को और अधिक विषम न बना देने की प्रार्थना की। पर 'इवाकुरो किकन' की शरारतें चलती रहीं। उसने लीग के मुकाबले में एक अन्य जापानी कठपुतली संस्था की स्थापना कर दी। मलाया के भारतवासियों में जापानी अधिकारियों की उक्त हरकतों से विक्षोभ इतना बढ़ गया कि लीग की मलाया शाखा की ३ दिन तक निरन्तर बैठक होती रही और उसके बाद वहां की विषम स्थिति का सूचक एक आवेदन पत्र श्री रासबिहारी बोस को भेज दिया गया।

आज़ाद हिन्द सरकार की ओर से नियुक्त अण्डमान और निकोबार के चीफ कमिश्नर और बाद में रंगून की आज़ाद हिन्द फौज के प्रमुख सेनापति कर्नल लोकनाथन ने फौजी अदालत के सामने उक्त विषम स्थिति का कारण क० मोहनसिंह तथा श्री रासबिहारी बोस के बीच मनमुटाव भी बताया और कहा कि श्री रासबिहारी बोस बहुत दिनों तक जापान में रहने के कारण जापानियों पर आवश्यकता से अधिक विश्वास करते थे और उनको इसमें कोई आपत्ति न थी कि उनसे फौज के संचालन व नियंत्रण में काम लिया जाय। क० मोहन सिंह इसके खिलाफ थे। उनकी माँग थी कि आज़ाद हिंद फौज के साथ मित्र सेना जैसा व्यवहार होना चाहिए और जिन फौजों से जापानी काम ले रहे हैं उन्हें आज़ाद हिंद फौज के आधीन किया जाना चाहिए। उस समय उन्होंने यह भी घोषणा की थी कि हम अंग्रेज़ों से ही नहीं अपितु यदि ज़रूरत पड़ी तो जापानियों से भी लड़ेंगे। क० मोहनसिंह की इन प्रवृत्तियों से उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया, पर बाद में उन्हें मुक्त कर दिया गया। और मार्च १९४५ को एक सद्भावना मिशन जापान भेजा गया जिसमें क० मोहनसिंह व कर्नल गिल भी शामिल थे।

१६ अप्रैल '४३ को मलाया शाखा के कार्यालय में पूर्वी एशियावासी भारतीयों का एक सम्मेलन हुआ। यह घोषणा की गई कि सुभाषबाबू २ मास के भीतर ही यहाँ पहुँचने वाले हैं। इस घोषणा से सारे मलाया में उत्साह व जोश की लहर दौड़ गई। सम्पूर्ण स्वतन्त्रता का आन्दोलन भी सैनिक आधार पर पुनः गठित किया गया, धन एवं सामग्री एकत्र की जाने लगी। आय व्यय के बजट बनाए गए और शाखाओं उप-शाखाओं को पुनः संगठित करके उनमें नवजीवन फूंक दिया गया।

आजादी का बिगुल

एक पनडुब्बी द्वारा २० जून १९४३ को सुभाषबाबू टोकियो पहुँच गये। एक मुस्लिम युवक श्री हसन उनके साथ थे। टोकियो में उनका भव्य स्वागत किया गया। लीग के प्रमुख नेता श्री रासबिहारी बोस व जापान के उच्च अधिकारी स्वयं बंदरगाह पर उनके स्वागत के लिये उपस्थित थे। जापानी भूमि पर उतरते ही उन्होंने प्रवासी भारतीयों के नाम पत्रों में निम्न वक्तव्य दिया—

"गत महायुद्ध में चालाक ब्रिटिश राजनीतिज्ञों द्वारा हमारे नेताओं को धोखा दिया गया, इसी लिए आज से २० वर्ष पूर्व हमने यह प्रतिज्ञा ग्रहण की थी कि हम भविष्य में फिर कभी नहीं ठगे जायेंगे।

"२० वर्षों से मेरी पीढ़ी के लोग अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते रहे हैं और आज उनका वह चिरप्रतीक्षित क्षण—भारतीय स्वतंत्रता का स्वर्ण प्रभात—आ पहुँचा है।"

"हम सब भली प्रकार जानते हैं कि ऐसा अवसर आगामी

आज़ाद हिन्द सरकार की ओर से नियुक्त अण्डमान और निकोबार के चीफ कमिश्नर और बाद में रंगून की आज़ाद हिन्द फौज के प्रमुख सेनापति जनरल लोकनाथन ने फौजी अदालत के सामने उक्त विषम स्थिति का कारण क० मोहनसिंह तथा श्री रासबिहारी बोस के बीच मतभेद भी बताया और कहा कि श्री रासबिहारी बोस बहुत दिनों तक जापान में रहने के कारण जापानियों पर आवश्यकता से अधिक विश्वास करते थे और उनको इसमें कोई आपत्ति न थी कि उनका फौज के संचालन व नियंत्रण में हाथ लिया जाय। क० मोहनसिंह इसके खिलाफ थे। उनकी माँग थी कि आज़ाद हिंद फौज के साथ मित्र सेना जैसा व्यवहार होना चाहिए और जिन फौजों से जापानी काम ले रहे हैं उन्हें आज़ाद हिंद फौज के आधीन किया जाना चाहिए। उस समय उन्होंने यह भी घोषणा की थी कि हम अंग्रेजों से ही नहीं अपितु यदि ज़रूरत पड़ी तो जापानियों से भी लड़ेंगे। क० मोहनसिंह की इन प्रवृत्तियों से उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया, पर बाद में उन्हें मुक्त कर दिया गया। और मार्च १९४५ को एक सद्भावना मिशन जापान भेजा गया जिसमें क० मोहनसिंह व जनरल गिल भी शामिल थे।

१९ अप्रैल '४३ को मलाया जनता के कार्यालयों पूर्वी एशियावासी भारतीयों का एक सम्मेलन हुआ। यह घोषणा की गई कि सुभाषबाबू एक मास के भीतर ही यहाँ पहुँचने वाले हैं। इस घोषणा से सारे मलाया में उत्साह व आशा की लहर दौड़ गई। सम्पूर्ण स्वतंत्रता आन्दोलन को सैनिक आधार पर पुनः संगठित किया गया, धन एवं सामग्री एकत्र की जाने लगी। आय व्यय के बजट बनाए गए और शाखाओं उपशाखाओं को पुनः संगठित करके उनमें नवजीवन फूंक दिया गया।

आजादी का बिगुल

एक पनडुब्बी द्वारा २० जून १६४३ को सुभाषबाबू टोकियो पहुंच गये। एक मुस्लिम युवक श्री हसन उनके साथ थे। टोकियो में उनका भव्य स्वागत किया गया। लीग के प्रमुख नेता श्री रासबिहारी बोस व जापान के उच्च अधिकारी स्वयं बंदरगाह पर उनके स्वागत के लिये उपस्थित थे। जापानी भूमि पर उतरते ही उन्होंने प्रवासी भारतीयों के नाम पत्रों में निम्न वक्तव्य दिया—

"गत महायुद्ध में चालाक ब्रिटिश राजनीतिज्ञों द्वारा हमारे नेताओं को धोखा दिया गया, इसी लिए आज से २० वर्ष पूर्व हमने यह प्रतिज्ञा ग्रहण की थी कि हम भविष्य में फिर कभी नहीं ठगे जायेंगे।

"२० वर्षों से मेरी पीढ़ी के लोग अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करते रहे हैं और आज उनका वह चिरप्रतीक्षित क्षण— भारतीय स्वतन्त्रता का स्वर्ण प्रभात—आ पहुंचा है।"

"हम सब भली प्रकार जानते हैं कि ऐसा अवसर आगामी

१०० वर्षों में फिर कभी हाथ आने को नहीं मिलेगा। इस लिये हमने इसका पूरा पूरा लाभ उठाने का निश्चय कर लिया है।

"ब्रिटिश साम्राज्यवाद का उद्देश्य भारत के लिए नैतिक पतन, सांस्कृतिक विनाश, आर्थिक अवनति और राजनैतिक दासता रहा है।

"हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपना खून देकर अपनी आजादी को हासिल करें। जो आजादी हम अपने बलिदान व श्रम से प्राप्त करेंगे उसे हम शक्ति के भरोसे कायम भी रख सकेंगे।

"दुश्मन ने तलवार निकाली है और हमें तलवार का जवाब तलवार से देना है। सविनय अवज्ञा को सशस्त्र समर का रूप धारण करना होगा। भारतीय लोग बड़े पैमाने पर ही बलिदान की आग में गुजर कर ही स्वतन्त्रता के अधिकारी हो सकेंगे।"

इसके बाद ही श्री सुभाषबाबू ने २० जून को टोकियो रेडियो से एक भाषण ब्राडकास्ट किया। उन्होंने कहा—

"जहां तक भारत का सम्बन्ध है, हमारे लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण सवाल यह है कि भारत के निकट युद्ध की स्थिति क्या है।"

"जब से अंग्रेज भारत में हैं किसी भी अंग्रेज सेनापति को कभी यह कल्पना भी नहीं हुई कि भविष्य में भारत की पूर्वी सीमा पर अंग्रेजों का कोई दुश्मन सिर उठाएगा। इस लिए ब्रिटेन की सारी सैनिक शक्ति का ध्यान भारत की पश्चिमोत्तर सीमापर ही केन्द्रित रहा।

"सिंगापुर के सामुद्रिक अड्डे को अपने कब्जे में रख कर उन्होंने यह सोचा था कि हिन्दुस्तान उनके हाथों में सुरक्षित है।

र जनरल यायाशीता श्रौर ईग्र की वैद्यु तिक प्रगति ने दुनिया की आँखों के आगे ब्रिटिश रणकौशल की निरर्थकता को स्पष्ट कर दिया है।

'तब से जनरल वेवेल भारत की पूर्वी सीमा पर किलेबन्दी करने में व्यस्त हैं, परन्तु भारतीय जनता का यह ख्याल है कि जब सिंगापुर के निर्माण में २० वर्ष लगे और खोने में केवल एक सप्ताह तो ब्रिटिश सेनापति या उनके उत्तराधिकारी को उनकी अपनी किलेबन्दियों से भागते कितनी देर लगेगी ?

"हम भारतीयों के लिये सबसे अधिक महत्व की बात यह नहीं है कि ट्यूनिस, टिमरूट, लम्पेडूसा या अलास्का में क्या हो रहा है। हमें तो यह देखना है कि भारत और उसकी सीमा के पार क्या हो रहा है।

"हमारे लिये महत्वपूर्ण बात यह है कि बर्मा की जिस जनविजय का इतना ढिंढोरा पीटा जा रहा था वह एक शर्मनाक पलायवर्तन में परिवर्तित होगई है। सिंगापुर के पतन और बर्मा की हानि से भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कानों पर जू नहीं रेंगी। हमारे शासक तो यह सोचते हैं कि आदमी आयेंगे, चले जाएंगे, साम्राज्य कायम होंगे और नष्ट हो जायेंगे पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद हमेशा बना रहेगा। आप इस राजनीतिक दिवालि आपन पर हँस सकते हैं, पर ब्रिटिश लोग जानते हैं कि उनके साम्राज्य का विस्तार भारत से बाहर होते हुए भी उनकी साधन सामग्री का प्रमुख स्रोत भारत है और इसलिये वह ही उनका साम्राज्य है। इसलिये इस युद्ध में और कुछ भी हो, पर वे भारत पर कब्जा कायम रखनेके लिये अपने खून की अंतिम बूंद तक

१०० वर्षों में फिर कभी देखने को नहीं मिलेगा। इस लिये हमने इसका पूरा पूरा लाभ उठाने का निश्चय कर लिया है।

"ब्रिटिश साम्राज्यवाद का उद्देश्य भारत के नैतिक पतन, सांस्कृतिक विनाश, आर्थिक अवनति और राजनैतिक दासता रहा है।

"हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपना खून देकर अपनी आजादी को हासिल करें। जो आजादी हम अपने बलिदान व श्रम से प्राप्त करेंगे उसे हम शक्ति के भरोसे कायम भी रख सकेंगे।

"दुश्मन ने तलवार निकाली है और हम तलवार का जवाब तलवार से देना है। सविनय अवज्ञा को सशस्त्र संघर्ष का रूप धारण करना होगा। भारतीय लोग बड़े पैमाने पर हो बलिदान की अग्नि में गुजर कर ही स्वतन्त्रता के अधिकारी हो सकेंगे।"

इसके बाद ही श्री सुभाषबाबू ने २० जून को टोकियो रेडियो से एक भाषण ब्राडकास्ट किया। उन्होंने कहा—

"जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, हमारे लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण सवाल यह है कि भारत के निकट युद्ध की स्थिति क्या है।"

"जब से अंग्रेज भारत में हैं किसी भी अंग्रेज सेनापति को कभी यह कल्पना भी नहीं हुई कि भविष्य में भारत की पूर्वी सीमा पर अंग्रेजों का कोई दुश्मन सिर उठाएगा। इस लिए ब्रिटेन की सारी सैनिक शक्ति का ध्यान भारत की पश्चिमोत्तर सीमापर ही केंद्रित रहा।

'सिंगापुर के सामुद्रिक अड्डे को अपने कब्जे में रख कर उन्होंने यह सोचा था कि हिन्दुस्तान उनके हाथों में सुरक्षित है।

पर जनरल यामाशीता और ईग की वैद्युतिक प्रगति ने दुनिया की आँखो के आगे ब्रिटिश रणकौशल की निरर्थकता को स्पष्ट कर दिया है।

'तब से जनरल वैवेल भारत की पूर्वी सीमा पर किलेबन्दी करने मे व्यस्त है, परन्तु भारतीय जनता का यह ख्याल है कि यदि सिंगापुर के निर्माण मे २० वर्ष लगे और खोने मे केवल एक सप्ताह तो ब्रिटिश सेनापति या उनके उत्तराधिकारीको उनकी अपनी किलेबन्दियो से भागते कितनी देर लगेगी ?

"हम भारतीयो के लिये सबसे अधिक महत्व की बात यह नहीं है कि ट्यूनिस, टिमबक्टू, लम्पेडूसा या अलास्का में क्या हो रहा है। हमें तो यह देखना है कि भारत और उसकी सीमा के पार क्या हो रहा है।

"हमारे लिये महत्वपूर्ण बात यह है कि बर्मा की जिस पुनर्विजय का इतना ढिंढोरा पीटा जा रहा था वह एक शर्मनाक प्रत्यावर्तन मे परिवर्तित होगई है। सिंगापुर के पतन और बर्मा की हानि से भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कानो पर जू नहीं रेंगी है। हमारे शासक तो यह सोचते है कि आदमी आयेंगे, चले जाएगे, साम्राज्य कायम होगे और नष्ट हो जायेंगे पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद हमेशा बना रहेगा। आप इस राजनीतिक दिवालियापन कह सकते है, पर ब्रिटिश लोग जानते है कि उनके साम्राज्य का विस्तार भारत से बाहर होते हुए भी उनकी साधन सामग्री का प्रमुख स्रोत भारत है और इसलिये वह ही उनका साम्राज्य है। इसलिये इस युद्ध मे और कुछ भी हो, पर वे भारत पर कब्जा कायम रखनेके लिये अपने खून की अंतिम बूंद तक

यद्ध दगे। यह आशा करना हमारे लिये पागलपन होगा कि अंग्रेज स्वेच्छा से अपने साम्राज्य को छोड़ देंगे। किसी भारतीय को इस भ्रम में नहीं रहना चाहिये कि इंग्लैंड कभी भारत की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लेगा। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि ब्रिटिश नीतिज्ञ भारत के साथ कभी सममौते के लिये हाथ नहीं बढ़ायेंगे। हाथ तो इसी वर्ष बढ़ायेंगे, पर वे भारत की स्वतन्त्रता स्वीकार नहीं करेंगे। केवल भुलावा देने का प्रयत्न करेंगे।

"इसलिये हमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद से सममौते की आशा सदा के लिये छोड़ देनी चाहिये। हमारी स्वतन्त्रता किसी से सममौता नहीं कर सकती। स्वतन्त्रता तभी प्राप्त होगी जब अंग्रेज और उनके साथी सदा के लिये भारत छोड़ जायेंगे। जो लोग सचमुच ही स्वतन्त्रता के अभिलाषी हैं उन्हें इसके लिये संघर्ष करना चाहिये और इसके लिये अपना खून देना चाहिये।

"देशवासियो और मित्रो! इस लिये हम अपनी आजादी की लड़ाई को अपनी सम्पूर्ण शक्ति और उत्साह के साथ भारत और भारतसे बाहर जारी रखना है। जबतक ब्रिटिश साम्राज्यवाद का दुर्ग नहीं टूट जाता और उसकी मिट्टी के अन्दर से एक बार फिर स्वतन्त्र भारत का जन्म नहीं होता तबतक हम दृढ विश्वास के साथ अपने संघर्ष को जारी रखना है। इस संघर्ष में पीछे लौटने या रुकने के लिये कोई अवकाश नहीं है। जबतक विजय और स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो जाती हम आगे, और आगे बढते जाना है।"

इसके ३ दिन बाद २४ जून १९४३को श्री सुभाषबाबू ने टेशनी

मुक्ति के लिये भारतीयों को आह्वान करते हुए पुन एक भाषण ब्राडकास्ट किया। उन्होंने कहा—

"हमारे कुछ देशवासियो का यह ख्याल है कि अतर्राष्ट्रीय परिस्थिति से विवश होकर ब्रिटेन जैसी साम्राज्यवादी शक्तियो को भारत जैसे गुलाम देशो की स्वतत्रता को स्वीकार करना होगा, परन्तु यह सब आशाए व्यर्थ हैं

"आप लोग जानते हैं कि १६४० के वर्ष के समाप्तिकाल मे जब मैंने यह देखा कि महात्मा गाधी की एक लम्बे भद्र अवज्ञा आँदोलन की योजना है, मुझे ऐसा लगा जैसे भारतीय लोगो के सम्मान और गौरव को चोट पहुचायी गयी है और उसके व्यर्थ करने के लिये यह आवश्यक था कि एक बड़े पैमाने पर भारतीय क्रांति की योजना बनायी जाय। आज मैं इस स्थिति मे हूँ कि यह घोषणा कर सकू कि उक्त उद्देश्य की पूर्ति कर ली गई है। हम अतर्राष्ट्रीय स्थिति को समझते हैं, और हमे अपनी अन्तिम विजय मे विश्वास है।

"भारत से बाहर के देशों मे रहने वाले सब भारतीय आज एक सगठन सूत्र में बध गये हैं। भारत मे होने वाली घटनाओं को वे ध्यान से देख रहे हैं और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्र से भी वे निर्यात सम्पर्क स्थापित किये हुए हैं। नजरबन्दी, अत्याचार और पाशविकता के बावजूद आप देश मे जो सघर्ष कर रहे हैं उसमे ठीक मौके पर अधिक से अधिक सहायता करने के लिये वे सब सम्भव तैयारियां कर रहे हैं।

"मित्रो ! आपको याद होगा कि पहले कई बार आपको यह

विश्वास दिला चुका हूँ कि जिस समय घड़ी आयेगी, मैं और मेरे सहयोग बहुत से लोग संघर्ष में भाग लेने, कष्ट उठाने और विजय हर्ष में हिस्सा बँटाने के लिए आपके साथ होंगे। आज हम उस वचन को पूरा कर रहे हैं।

"भारत अवश्य स्वतंत्र होगा और वह भी शीघ्र ही। स्वतंत्र भारत जेलों के दरवाजे खोल देगा जिससे कि उसके योग्य पुत्र जेल की कोठरियों के अंधेरे में से स्वतंत्रता के प्रकाश की ओर कदम बढ़ा सकेंगे।"

सुभाषबाबू के मुख से जी जान फूंक देने वाले इन भाषणों ने पूर्वी एशिया में एक क्रांति मचा दी। भारत के दरवाजे पर सेंसरशिप की कुण्डी लगी हुई थी, इसलिए वहां जो कुछ हुआ उसकी एक झांकी भी भारतवासियों को नहीं मिल सका। भारत की मुक्ति का जो विशाल आयोजन भारतभूमि के बाहर चल रहा था वह भारतीयों की अज्ञानता में ही चलता रहा। श्री सुभाष बाबू ने २६ जून १९४३ को पूर्वी एशिया के प्रवासी भारतीयों को भारत की मुक्ति के लिए एक सेना के निर्माण में उनका हाथ बटाने की अपील करते हुए कहा—

"भारत को स्वतंत्र करने की जिम्मेदारी हमारे ऊपर है और केवल हमारे ऊपर है, परन्तु शत्रु अत्यंत निर्दय और सिर से पैर तक शस्त्रास्त्रों से लैस है। सत्याग्रह, तोड़ फोड़ और आतंक से कुछ नहीं हो सकता। यदि हम ब्रिटिश ताकत को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल देना चाहते हैं तो हमें तलवार का जवाब तलवार से देना होगा।

"मुझे विश्वास है कि पूर्वी एशिया में अपने देशवासियों की सहायता से मैं एक ऐसी विशाल सेना का संगठन कर सकूँगा जो

भारत में ब्रिटिश ताकत को काफूर कर देगी। घन्टा बज गया है और हर एक हिन्दुस्तानी को युद्ध क्षेत्र की ओर कदम बढ़ाना है। जब स्वतन्त्रताप्रिय भारतीयों का खून युद्ध के मैदान में बहेगा तो भारत अपनी आजादी हासिल कर लेगा।"

कमान सभालो

२ जुलाई १९४३ का दिन था। सारे शोनान में उत्साह और आनन्द का सागर उमड़ रहा था। जिस मुख पर देखो खुशी नजर आती थी। जिस गली में देखो, जिस कूचे में देखो एक ही चर्चा थी, एक ही बात थी—'नेता जी आगए। नेता जी आगये।' श्रद्धा और प्रेम के आवेग से परिपूर्ण नर-नारी अपने दिलों के बादशाह नेता जी सुभाष बाबू के दर्शन के लिए दौड़े चले जा रहे थे। मलायी, चीनी जापानी आदि सबका एक ही हाल था। लाखों लोग इस महान क्रान्तिकारी भारत के पार्थिव देवता के दर्शन के लिए उत्सुक थे। उस दिन शोनान में एक अद्भुत दृश्य उपस्थित था। मलाया के इतिहास में यह एक अभूतपूर्व घटना थी। लोग आश्चर्य और श्रद्धामिश्रित दृष्टि से नेता जी के दर्शन कर अपने को कृतार्थ समझ रहे थे। किसी सम्राट ने भी ऐसा भव्य और आदरपूरित स्वागत क्या देखा होगा!

उन्नत छाती प्रतिभा से आलोकित विशाल भाल, आंखों में दैदीप्य शक्ति और अधरों पर देवदूत की सी मुस्कराहट लिए नेता जी शान्त जनसमुदाय के बीच खड़े थे। उस एक मूर्ति ने लाखों आंखों को

अपने पर केन्द्रित कर लिया था कि भीड़ में से एक आदमी ने आगे बढ़ कर पूछा—'जापानियों का क्या विश्वास? वे धोखा भी दे सकते हैं।' नेता जी मुड़े, हंसे और कहा—'क्या तुम यह विश्वास करते हो कि मुझमें इतनी बुद्धि है कि मैं उल्लू न बनाया जा सकूं? विश्वास कीजिये कि जापानी हमें धोखा नहीं दे सकते। वे तबतक ही ऐसा कर सकते हैं जबतक हम अपने को अच्छी तरह सगठित नहीं कर लेते—अपनी स्वतन्त्रता के सघर्ष के लिये भारतीयों की एक सेना नहीं खड़ी कर लेते। हर एक आदमी काम करने के लिये तैयार हो जाय। मैं आपको काम दूंगा। काम—काम—काम—यही मेरी और तुम्हारी टेक है।"

श्री सुभाष बाबू के दो दिन शोनान में अत्यन्त कार्यव्यस्तता में बीत गए। हांगकांग, थाइलैण्ड, बर्मा, बोर्नियो आदि की लीग-शाखाओं के कार्यकर्त्ताओं से उन्होंने भेंट की और परामर्श दिया। आजाद हिन्द फौज के नेताओं से भी वे मिले।

चार जुलाई को खुला अधिवेशन हुआ। पूर्वी एशिया के सभी भारतीय प्रतिनिधि इसमें उपस्थित थे। सभामण्डप को महात्मा गांधी के एक विशाल रंग चित्र द्वारा सजाया गया था। मंचपर श्री रास बिहारी बोस व अन्यान्य लीग अधिकारियों के साथ नेताजी की सुन्दर भव्य मूर्ति सुशोभित थी। उपस्थित जनसमुदाय बद्धदृष्टि होकर अपने मुक्तिदाता श्री सुभाष बोस की ओर देख रहा था और इस प्रतीक्षा में था कि वे अपना वर्चस्वी भाषण आरम्भ करें। आरम्भ में श्री रास बिहारी ने अपने संक्षिप्त भाषण में आगत जनसमुदाय का स्वागत किया और नेताजी श्री सुभाष के हाथों में इण्डियन इण्डिपैन्डेंस लीग

का नेतृत्व करने की घोषणा की। यह घोषणा होते ही सारा सभामण्डप तालियों की गड़गड़ाहट 'नेताजी की जय' और 'सुभाष बाबू जिन्दाबाद' के नारों से गूंज उठा नेताजी खड़े हुए। और इसके साथ ही सारे सभास्थल में श्मशान की सी शांति छा गई। उन्होंने अपने ज्योतिमय नेत्रों से चारों ओर देखते हुए जलद-गम्भीर वाणी में कहना आरम्भ किया –

'मित्रो ! स्वतन्त्रताप्रिय भारतीयों के लिये काम करने का समय आ पहुंचा है। युद्ध सङ्कट के इस काल में सैनिक अनुशासन तथा लक्ष्य के प्रति अखण्ड निष्ठा की आवश्यकता है। मैं पूर्वी एशिया के सब स्वदेशवासियों से यह अपील करता हूं कि वे सिर पर आगई भीषण लड़ाई के लिये तैयार हो जायें।

"मैं एकबार पुनः प्रत्येक को यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि हमने अबतक जो कुछ किया है और भविष्य में जो कुछ करेंगे वह भारतमाता की आजादी के लिये रहा है और रहेगा। हम ऐसा काम कभी नहीं करेंगे जो भारत के लिये हानिप्रद हो अथवा जिसके पीछे भारतीय जनता का समर्थन न हो।...

'अपनी सब शक्तियों को प्रभावोत्पादक तरीके से सगठित करने के लिये मैं स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार का निर्माण करना चाहता हूं। यद्यपि अंतिम विजय में हमें विश्वास है तथापि आप शत्रु की शक्ति को कम न करें। हम एक भीषण लड़ाई लड़नी है, क्योंकि शत्रु शक्तिशाली और निर्दय है। स्वतत्रता के इस अंतिम अभियान में आपको भूख, प्यास और मौत का सामना करना पड़ेगा। इस परीक्षा में से गुजर कर ही आपको स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकेगी।"

दूसरे दिन ५ जुलाई को टाउनहाल के सामने एक विशाल सैनिक प्रदर्शन हुआ। राष्ट्रगीत गाया गया। हजारों सैनिकों ने हृदय में जीवित उन्माद और आत्मा में सम्मान का भाव प्रकट करते हुए नेता जी को सलामी दी। सब झगड़े और मतभेद भुला दिये गये। नेता जी ने एक दिन में दुनिया बदल दी। सैनिकों को सम्बोधन करते हुए उन्होंने कहा —

"आज़ाद हिंद फौज के वीर सिपाहियो! आज का दिन मेरे लिये अत्यन्त गर्व का दिन है। विधि ने प्रसन्न होकर आज मुझे और संसार के सामने आजाद हिन्द फौज के निर्माण की घोषणा करने का सम्मान प्रदान किया है। यह वह सेना है जो भारत को ब्रिटिश जुए से मुक्त करेगी। प्रत्येक भारतीय को इस बात पर गर्व अनुभव होगा कि इस सेना का सम्पूर्ण नेतृत्व भारतीयों के हाथमें है।

"साथियो! मेरे सैनिको! तुम्हारे युद्ध का नारा होगा— "दिल्ली चलो।" मुझे पक्का विश्वास है कि अंत में जीत हम लोगों की ही होगी और हमारे इस पवित्र संघर्ष की समाप्ति तब तक न होगी जब तक हम लोगों में से जीवित बचे वीर प्राचीन दिल्ली के लाल किले में अपनी विजय परेड न कर लेंगे।

"बहादुर साथियो! आज तुम्हीं भारत के महान राष्ट्रीय गौरव के वीर रक्षक हो और तुम्हीं भारतवर्ष की आशाओं व आकांक्षाओं के प्रतीक हो। इसलिये तुम इस तरह चलो कि तुम्हारे देशवासी तुम्हें विजयआशीर्वाद दें और तुम्हारी भावी संतान तुम पर गर्व करें। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं

सदैव अन्धकार और प्रकाश में, दुख और प्रसन्नता में और कष्ट और जीत में तुम्हारा साथ दूंगा।

"भूख, प्यास, कष्ट, लम्बी यात्राएं, और मृत्यु के अतिरिक्त इस समय इस हालत में मैं तुम्हें और कुछ नहीं दे सकता। इस बात का भी महत्व नहीं है कि हम लोगों में से कौन आजाद हिन्दुस्तान को अपनी आंखों से देखने के लिये जीवित बचेगा। बस, इतना ही पर्याप्त है कि हिन्दुस्तान आजाद होगा और हम लोग उसे आजाद करने में अपना सर्वस्व अर्पण कर देंगे।

"ईश्वर, हमारे सैनिकों को वरदान दे और आगामी संघर्ष में हमें विजय प्रदान करे।!"

प्रथम आजाद हिंद फौज के पृथक एवं सर्वथा स्वतन्त्र संगठन में 'इवाकुरो किकन' ने बाधाओं का जो पहाड़ खड़ा कर दिया था, सुभाष बाबू की घोषणा से वह हवा में उड़ गया। शेर मैदान में आया और उसने एक ही दहाड़ में सब विरोधियों के मुंह बन्द कर दिए। मलाया थाईलैंड आदि के हजारों भारतीय भारत की मुक्ति के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हुए दूसरी आजाद हिंद फौज में भरती होने लगे। इस आजाद हिंद फौज में होने वाले प्रत्येक सैनिक को निम्न प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़ते थे —

मैं स्वेच्छा से आजाद हिंद फौज में अपना नाम लिखवा रहा हूं। मैं हृदय से अपने आपको भारत की भेंट चढ़ाना चाहता हूं और प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं अपना जीवन भारत की स्वतन्त्रता के लिए अर्पित कर दूंगा। भले ही मुझे मौत के खतरे से खेलना पड़े, मैं भारत की आजादी के आन्दोलन में तन मन से सम्मिलित होने में कुछ उठा न

रखूंगा। और इससे किसी निजी लाभ की आशा न रखूंगा। जाति और धर्म से ऊपर हरएक भारतीय को मैं अपना भाई बहिन समझूंगा।'

६ जुलाई को एक और ही भव्य दृश्य उपस्थित हुआ। जापान के प्रधानमन्त्री जनरल तोजो शानान आप और नेताजी के साथ एक उच्च मादपीठ पर खड़े होकर आजाद हिंद फौज के एक विराट सैनिक-प्रदर्शन को देखा। १॥ घण्टे तक उनके सामने के मैदान में से पंक्तिबद्ध सेनायें अपना तिरंगा झण्डा उठाये और कदम से कदम मिलाये गुजरती रहीं और वे तथा नेताजी पूर्ण स्थिर भाव से उन्हें देखते रहे। जनरल तोजो को उस दिन पता लगा कि नेता जी क्या हैं और उनकी संगठन शक्ति और प्रभाव का वस्तुतः क्या अर्थ है। हृदय पर एक अमिट छाप लेकर वे वहां से विदा हुए। उस दिन के बाद से आजाद हिंद फौज के संगठन का कार्य अत्यन्त निर्बाध रूप से चलता रहा। किसी जापानी अधिकारी को यह हिम्मत नहीं हुई कि वह उनके कार्य में हस्तक्षेप कर सके।

मलाया के प्रवासी भारतीयों में जागृति इस आग को देखकर मलायी लोग भी चुप नहीं थे। वे बड़ी तीव्रता से अनुभव कर रहे थे कि किस प्रकार ब्रिटिश लोगों ने बिना तलवार का एक वार किये सिर्फ धोखाधड़ी और चालाकी से मलाया को खरीद लिया। सिंगापुर पेनांग, मलक्का, पैराक, हीलांगर, नेग्री सेमबिलान और पहांग आदि सब अंग्रेजों ने इसी प्रकार या तो खरीद लिये अथवा वहां अंग्रेजों की हत्या के सिलसिले में दण्डस्वरूप हस्तगत कर लिये। उसी का परिणाम यह हुआ कि मलायी लोग भी इस आंदोलन के साथ हो गये और उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे ब्रिटिश प्रभाव और शासन से मुक्ति पाने के लिये सब कुछ दांव पर लगा देंगे।

नेताजी की लोकप्रियता की ख्याति दूर दूर तक फैलती जा रही था। उनके एक एक शब्द पर लोग अपना सिर तक कटाने के लिए तैयार थे। स्त्री-बच्चों के प्रति नेताजी अत्यंत श्रद्धालु व सहृदय थे। ८ जुलाई को आज़ाद हिन्द फौज के महिला विभाग के कार्यालय में जब नेताजी आए तो एक बूढ़ा स्त्री ने द्वार पर उनके चरणस्पर्श करने का प्रयत्न किया। नेताजी ने उस बीच में ही उठाते हुए श्रद्धाविह्वल भाव से कहा 'माँ!' इस करुण दृश्य को देखकर उपस्थित महिलाओं की आँखें अश्रुपूर्ण हो गई।

६ जुलाई को यहाँ म्युनिसिपल भवन के सामने एक विराट सार्वजनिक सभा हुई। दूर दूर तक लोगों के सिर ही सिर नज़र आते थे। 'नेताजी ज़िन्दाबाद' के नारों के बीच भारतीय स्वतन्त्रता के अग्रदूत सुभाष बाबू खड़े हुए और गंगा के उज्ज्वल वेग की तरह उनकी विमल वाणी प्रवाहित होने लगी। वह वाणी जिसके कानों में पड़ जाती थी वही अपने को कृतकृत्य समझने लगता था। उनके शब्दों में जोश था, धीर्य था पर उद्दाम न था। वाणी में वेग था, गति थी, पर निस्सारता नहीं थी। उनके शब्द जादू की तरह लोगों पर असर कर रहे थे। जो सुनता था मुग्ध हो जाता था। पैनी धार की तरह उनका तर्कपूर्ण भाषण प्रवाह उपस्थित जन-समुदाय के हृदय और मस्तिष्क पर एक साथ सीधी चोट कर रहा था। उन्हें लग रहा था जैसे कि वे गुलामी की गंध से मुक्त स्वतन्त्र वातावरण में साँस ले रहे हैं। नेताजी बोल रहे थे

"यदि भारत और भारत से बाहर के रहने वाले हिंदुस्तानियों ने अपना कर्तव्य पूरा किया तो भारतीय ब्रिटिश ताकत को हिंदुस्तान से निकाल बाहर कर सकेंगे और अपने देश के ३८ करोड़ आदमियों को मुक्ति प्रदान कर सकेंगे। मित्रो! पूर्वी एशिया

के आप "० लाख लोगों का नारा होना चाहिए —अंतिम युद्ध के लिए पूर्ण संगठन। मैं आशा करता हूँ कि इस काम के लिए कम से कम ३ लाख सैनिक और ३करोड डालर एकत्र कर लिए जायेंगे। मैं बहादुर भारतीय महिलाओं की भी मात को चुनौती देने वाली एक रेजिमेंट खड़ी करना चाहता हूँ। यह रेजिमेंट उस तलवार को पकड़ेगी और घुमाएगी जो कभी १८५७ में झाँसी की रानी ने पकड़ी थी और घुमाई थी।'

नेताजी के इस धाराप्रवाह भाषण के बीच में ही आकाश से भी धारासम्पात वर्षा होने लगी। नेताजी ने अत्यन्त स्वर में कहा—"आप लोगों में से कोई न उठे। सब बैठे रहें। वर्षा हमें नहीं डरा सकती।" एक भी आदमी अपनी जगह से नहीं उठा। चोटी से एड़ी तक पानी से सराबोर हुआ प्रत्येक स्त्री पुरुष नेता जी के भाषण को सुनता रहा। नेताजी अनुशासन के इस अद्भुत दृश्य को देखकर गद्गद हो गये और विशेषकर तब जब उन्होंने देखा कि उपस्थित महिलाओं की गोदियों में बच्चे भी हैं।

अब तक इण्डियन इण्डिपेंडेंस लीग के नेता महिला-सेना खड़ी करने के विरुद्ध थे, पर अब सुभाषबाबू के आदेश से 'झांसी की रानी रेजिमेण्ट' की स्थापना कर दी गई। १२ जुलाई को इण्डियन इण्डिपेंडेंस लीग के महिला विभाग की ओर से एक विशाल सभा की गई। नेताजी उसमें भाषण देने के लिए आमंत्रित थे। सैकड़ों औरतें नेताजी के भाषण को सुनने के लिए १० १०, १२ १२ मील से पैदल चल कर पहुंची थीं। सभा भवन में पैर रखने को जगह नहीं थी। नेता जी को फूलों के हारों से लाद दिया गया। आज सभा भवन क्रांतिकारी गानों से गूँज रहा था कि इतने में ही उपस्थित स्त्री समुदाय के बीच में से

एक गुजराती महिला उठी और उसने अपने शरीर पर जितने हीरे जवाहरात, चूड़ियां, अंगूठियां व हार पहिने हुए थे सब नेता जी के चरणों में समर्पित कर दिए। उपस्थित जनता ने सांस रोक कर त्याग के इस अनुपम दृश्य को देखा। नेता जी गद्‌गद [redacted] गए। उन्होंने कहा:—

"बहिनो! आप सब जानती हैं कि १९२१ में महात्मा गांधी द्वारा कांग्रेस की बागडोर सम्भालने के बाद महिलाओं ने आजादी के इस आंदोलन में क्या भाग अदा किया है। न केवल कांग्रेस के सत्याग्रह, पिकटिंग, जलूस, लाठियां खाने और जेल की यातनाएं भुगतने में अपितु गुप्त क्रांतिकारी आन्दोलन में भी उनका बड़ा भारी हिस्सा है। मैं जानता हूँ कि हमारी बहिनें क्या कर सकती हैं। मैं यह कह सकता हूँ कि वे हर मुसीबत और हर कष्ट को बरदाश्त कर सकती हैं।

"जो लोग यह कहते हैं कि उनको बन्दूक लेकर चलना शोभा नहीं देता उनसे मैं कहूंगा कि वे इतिहास के पन्ने पलटें। भूतकाल में बहादुर औरतों ने क्या किया? १८५७ में प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने क्या किया? वह एक रानी थी जिसने तलवार खींचकर और घोड़े पर सवार होकर युद्ध के मैदान में सेना का नेतृत्व किया। हमारे दुर्भाग्य से वह हार गयी और भारत पराधीन रह गया, परन्तु उनके १८५७ में छोड़े हुए काम को हमें जारी रखना है।

"आजादी की इस अन्तिम लड़ाई में हमें हजारों झांसी की रानियों की जरूरत है।"

सिंगापुर कैम्पों में ट्रेनिंग के लिए इन्स्पेक्टर तैयार करने के लिए दो 'आजाद स्कूल' खोल दिये गए। उधर नेता जी के मलाया भर में

इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग का प्रधानमंत्रित्व भी श्रीमान् से, दूसरे ... में ले लिया जायगा।'

श्री सुभाषचन्द्र ने अपने इस भाषण में महात्मा गांधी के प्रति तथा स्व. महादेव भाई देसाई के प्रति भी श्रद्धांजलि अर्पित की। ... को नेताजी ने आजाद हिन्द फौज की कमान सीधी अपने हाथ में ले ली और उस दिन निम्न विशिष्ट सेना आदेश जारी किया—

"मेरे लिये आज अत्यन्त प्रसन्नता और अभिमान का दिन है। किसी भारतीय के लिए इससे अधिक सम्मान का और क्या बात हो सकती है कि वह भारत की मुक्ति सेना का सेनापति हो।

"मैं अपने को अपने ३८ करोड़ देशवासियों का सेवक समझता हूं। मैं कर्तव्य को इस तरह से निबाहने का दृढ़ निश्चय किए हूँ, कि इन ३८ करोड़ भाइयों के हित सुरक्षित रहें तथा प्रत्येक भारतीय मुझमें पूर्ण विश्वास प्रतिष्ठित कर सके।

भारत-माता की मुक्ति के भावी संघर्ष में आजाद हिन्द फौज को एक महत्वपूर्ण भाग अदा करना है। हमने अपने को एक ऐसी सेना के रूप में संगठित कर लिया है जिसका एक ही लक्ष्य होगा—'भारत की स्वतंत्रता' और एक ही आकांक्षा होगी—भारती को मुक्त करेंगे या उसके लिए प्राण निछावर कर देंगे। हमारा काम सरल नहीं है। युद्ध लम्बा और कठिन होगा, परन्तु अपने लक्ष्य की सिद्धि में मुझे पूर्ण विश्वास है। दुनिया की कुल आबादी के पंचमांश ३८ करोड़ आदमियों को स्वतन्त्र होने का अधिकार है और वे उसके लिए कीमत चुकाने को तैयार हैं।

पृथ्वीतल पर ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो स्वतन्त्रता के हमारे जन्मसिद्ध अधिकार को प्राप्त करने से हमें रोक सके।

"साथियो! हमारा काम पहले ही शुरू हो गया है। अपने होठों पर 'दिल्ली चलो' के नारे के साथ हमें तब तक अपने संघर्ष को जारी रखना होगा जब तक कि दिल्ली में वायसराय भवन पर तिरंगा झंडा नहीं फहराया जाता और प्राचीन लाल किले के मैदान में आजाद हिन्द फौज विजय—परेड नहीं कर लेती।"

स्योनान, कुआलालम्पुर और सालेदार में ट्रेनिंग कैम्प खुल गए और नेताजी ने अनेक कैम्पों का स्वयं वहां जाकर निरीक्षण किया। कुआलालम्पुर का दौरा करते हुए नेताजी ने लोगों से कहा कि अब प्रत्येक व्यक्ति के लिये अधिक से अधिक बलिदान करने का समय आ पहुंचा है। २६ सितम्बर को रंगून में अन्तिम मुगल सम्राट बहादुर शाह की कब्र पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये अन्तिम दम तक भारत की आजादी की लड़ाई जारी रखने के अपने दृढ़ निश्चय को दुहराया और बहादुरशाह के इस शेर को दुहराया—

> गाजियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की,
> तख्त लो लन्दन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की।

२ अक्तूबर को महात्मा गांधी का जन्मदिवस सारे पूर्वी एशिया में बड़ी शान के साथ मनाया गया। प्रभातफेरियां निकाली गईं राष्ट्रीय गीत गाये गये और हर घर पर तिरंगे झण्डे उठाये गये। इस अवसर पर नेताजी ने एक विराट सभा में महात्मा गांधी द्वारा देश के प्रति की गई उनकी अप्रतिम सेवाओं के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते

हुए १९२० की नागपुर-कांग्रेस में महात्मा गांधी द्वारा की गई इस घोषणा की याद दिलाई—"यदि आज हिन्दुस्तान के पास तलवार होती तो उसने तलवार खींच ली होती, परन्तु आज जब कि सशस्त्र क्रांति का कोई सवाल पैदा नहीं होता, देश के सामने असहयोग और सत्याग्रह का ही मार्ग है।" नेताजी ने कहा कि अब समय बहुत बदल गया है। अब भारतीय जनता के लिए तलवार खींचना सम्भव है। हमें इस बात का हर्ष है और गर्व है कि भारत की आजादी की सेना की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है ।'

आजाद हिंद जिंदाबाद

२१ अक्तूबर १९४३ का उज्ज्वल दिन था। १७ अक्तूबर ४३ को इपोह में एक नया शिक्षण शिविर खुला। 'इण्डियन इण्डिपेंडेंस लीग' द्वारा एक ऐतिहासिक सम्मेलन काय-तोमा गोकिजो में बुलाया गया था। पूर्वी एशिया के समस्त भारतीय प्रतिनिधि इसमें सम्मिलित थे। स्वागत-पत्र व रिपोर्ट के बाद नेताजी ने आजाद हिंद सरकार की स्थापना की घोषणा करते हुए उपस्थित जनता को उसका महत्त्व बतलाया। १॥ घण्टे तक निरंतर भाषण देने के बाद जब वे भारत के प्रति निष्ठावान रहने की शपथ ग्रहण करने लगे तो सारा सभाभवन तुमुल करतल ध्वनि से गूंज उठा। भावनाओं के आवेग से नेताजी का कण्ठ अवरुद्ध होगया और कुछ मिनट तक वे कुछ भी न बोल सके। सभा में सन्नाटा खिंच गया। अन्त में दृढ़ गम्भीर आवाज में नेताजी ने कहा—"ईश्वर के नाम पर मैं अपने देश भारतवर्ष और अपने उन अड़तीस करोड़ भारतवासियों को स्वतंत्र करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। मैं सुभाष चन्द्र बोस स्वतन्त्रता के इस पवित्र युद्ध को अपने जीवन की अंतिम सांस तक जारी रखूंगा।" यहां पर व कुछ देर के लिए रुके

और उन्होंने फिर कहना शुरू किया—"मैं सदैव अपने देश भारत वर्ष का सेवक रहूँगा और सदैव अपने ३८ करोड़ भाई बहनो के कल्याण म लगा रहूँगा। यही मेरे लिए मेरा सबसे प्रमुख कर्तव्य होगा। स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने के बाद भी मैं उसकी रक्षा के लिए अपने रक्त की अंतिम बूंद तक बहाने को तत्पर रहूँगा।"

इसके बाद आजाद हिन्द अस्थायी सरकार का प्रत्येक सदस्य सभा के स मुख उपस्थित हुआ और व्यक्तिगत रूप से शपथ ग्रहण की—"ईश्वर के नाम पर मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने देश के ३८ करोड़ देशवासियों को मुक्त करने म मैं सदैव पूर्ण रूप से अपने नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस के प्रति सच्चा और विश्वासपात्र रहूँगा और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपना जीवन और अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति हर समय अर्पित करने को तैयार रहूँगा।"

आजाद हिंद सरकार के सर्वोच्च अधिकारी और मन्त्रियों द्वारा शपथ ग्रहण किये जाने के उपरान्त निम्न घोषणापत्र पढ़ा गया—

"१८५७ में बंगाल में अंग्रेजों द्वारा भारतीयों की मिली प्रथम पराजय के बाद से भारतीय जनता १०० वर्ष तक निरन्तर कठोर संघर्ष करती रही है। इन १०० वर्षों का इतिहास अभूत पूर्व वीरता और आत्म बलिदान के उदाहरणों से भरा पड़ा है। और उस इतिहास के पृष्ठों में सिराजुद्दौला, मोहनलाल, हैदरअली, टीपू सुलतान, वेलू थाम्पी, अप्पा साहिब भोसले, बाजीराव पेशवा, अवध की बेगमें, सरदार श्यामसिंह अटारीवाला और अंतिम किंतु अत्यंत महत्त्वपूर्ण रानी लक्ष्मीबाई, महाराजा कुँवरसिंह, और तातिया टोपे इन तथा अनेक योद्धाओं के नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे हुए हैं। हमारे

दुर्भाग्य से हमारे पूर्वजों ने यह अनुभव नहीं किया कि अंग्रेज सम्पूर्ण भारत के लिए महान खतरा हैं और इसी लिए उनके खिलाफ उन्होंने कोई संयुक्त मोर्चा नहीं लिया। अन्त में जब भारतीयों ने स्थिति की वास्तविकता को अनुभव किया तो उन्होंने संयुक्त रूप में १८५७ में सम्राट बहादुरशाह के नेतृत्व में स्वतन्त्र व्यक्तियों के रूप में अन्तिम संग्राम लड़ा। इस युद्ध के शुरू के हिस्से में बड़ी शानदार विजय हासिल हुई, लेकिन बदकिस्मती और दोषपूर्ण नेतृत्व ने अन्त में वे पराजित होगए, मगर फिर भी झाँसी की रानी, तांतिया टोपे, कुँवरसिंह और नाना साहेब राष्ट्र के स्मृति आकाश के अक्षीण नक्षत्रों के समान हमें बलिदान और वीरता के महान कार्यों के लिए अनुप्राणित कर रहे हैं।

"१८५७ के बाद अंग्रेजों द्वारा जबर्दस्ती निःशस्त्र किये जाने तथा आतंक और पशुता के शिकार होने पर कुछ काल के लिए जनता निश्चल पड़ गई, किन्तु १८८५ में गत महायुद्ध की समाप्ति तक भारतीय जनता ने अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सब सम्भव प्रयत्न किए—अर्थात् आन्दोलन, प्रोपैगैण्डा, ब्रिटिश माल का बहिष्कार, आतंकवाद और तोड़ फोड़—और अन्त में सशस्त्र क्रांति, किन्तु ये सब प्रयत्न कुछ समय के लिए व्यर्थ गये। आखिरकार १६२० में जब भारतीय जनता कोई नया रास्ता टटोल रही थी, महात्मा गांधी अपने असहयोग तथा सविनय अवज्ञा के नये शस्त्रों के साथ सामने आये।

"इसके बाद २० वर्ष तक भारतीय जनता प्रगाढ़ देशप्रेम के कार्यों से आप्लावित रही। स्वतन्त्रता का सन्देश प्रत्येक हिन्दुस्तानी के घर जा पहुंचा। व्यक्तिगत आदर्श द्वारा जनता

की स्वाधीनता के लिए तड़पना, बलिदान और मृत्यु के पाठ पढ़ाया गया। केन्द्र से लेकर दूर से दूर के गांव तक सब एक राजनैतिक संगठन में आबद्ध हो गए। इस प्रकार भारतीय जनता ने न केवल अपनी राजनैतिक चेतना फिर प्राप्त करली अपितु वह एक बार पुनः एक सामर्थ्यपूर्ण राजनैतिक सत्ता बन गई। १९३७ से १९३९ तक कांग्रेस मंत्रि-मण्डलों के द्वारा इस ने अपनी शासन क्षमता का प्रमाण दिया।

"इस प्रकार वर्तमान विश्वयुद्ध के ठीक पूर्व भारत की मुक्ति के अन्तिम संघर्ष की सीढ़ी तैयार हो चुकी थी।

"यूरोप में जर्मनी और पूर्वी एशिया में जापान ने हमारे शत्रुओं पर हमला कर दिया है। आज़ादी प्राप्त करने का हमारे सामने यह बड़ा सुन्दर सुयोग उपस्थित हुआ है।

"पूर्वी एशिया में इस समय ३० लाख भारतीय संगठित हैं और 'मुकम्मिल भर्ती' का नारा है। उनकी पहली कतार में भारतीय सेना के वे अफसर हैं जिनके होठों पर 'दिल्ली चलो' का नारा गूंज रहा है।

"अपने छल-कपट से भारतीयों को निराश करके और अपनी लूट-खसोट से उन्हें भूखा मारकर ब्रिटिश शासन भारतीयों की सद्भावना खो चुका है और अब वह अपने अन्तिम सांस ले रहा है। इस अभागे शासन की समाप्ति के लिए अंतिम चिंगारी की आवश्यकता है। इसी चिंगारी को लगाने का काम भारत की मुक्ति सेना करेगी। इस सेना का दृढ़ निश्चय है कि वह अपने उद्देश्य में सफल होगी।

"आज जबकि स्वतन्त्रता का उष:काल निकट आ रहा है,

भारतीयां का कर्तव्य है कि वे अपनी अस्थायी सरकार की स्थापना करें उसके झण्डे के नीचे अपनी अंतिम लड़ाई शुरू करें। परन्तु सब भारतीय नेताओं के जेल में बंद तथा जनता के पूर्णतया निःशस्त्र होने के कारण भारत भूमि में इस सरकार का बनाना सम्भव नहीं है। इसलिए पूर्वीएशियाकी आज़ाद इण्डियन इण्डिपेंडेंस लीग का यह कर्तव्य है कि वह देश और विदेश के सब देशों में भी भारतीयों के सहयोग से एक आज़ाद हिंद सरकार बनाये और लीग द्वारा आयोजित आज़ाद हिंद फौज की सहायता से आज़ादी की अंतिम लड़ाई छेड़ दे।

"पूर्वी एशियाकी आज़ाद इण्डियन इण्डिपेंडेंसलीग द्वारा बनाई गई अस्थायी सरकार के सदस्य होने पर हम अपनी पूरी जिम्मेवारी को समझते हुए अपना कार्य अपने ऊपर लेते हैं। हम प्रार्थना करते हैं कि भगवान हमारी मातृभूमि को दासता से मुक्ति के हमारे संघर्ष में हमें आशीर्वाद दे और हम आज अपने और अपने साथियों के जीवन अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता, उसके सुख व उत्थान के लिए समर्पित करने की प्रतिज्ञा करते हैं। इस अस्थायी सरकार का यह कार्य होगा कि वह ब्रिटेन तथा उसके साथियों को मातृभूमि से बाहर करने के लिए संग्राम करे।

"यह अस्थायी सरकार प्रत्येक भारतीय की निष्ठा की अधिकारी व दावेदार है। यह अपने सब नागरिकों के लिए धार्मिक स्वतंत्रता तथा समान अधिकार व अवसर की गारण्टी करती है।

"भगवान के नाम पर, उन पीढ़ियों के नाम पर जिन्होंने

भारतीय जनता को मिलाकर एक राष्ट्र में परिणत कर दिया और उन शहीदों के नाम पर जिन्होंने हमारे लिए शौर्य और आत्म बलिदान की परम्परा विरासत में दी है—हम भारतीय जनता का आह्वान करते हैं कि वह हमारे झण्डे तले एकत्र हो और भारत स्थित ब्रिटिश व उनके साथियों के खिलाफ अंतिम संघर्ष छेड़ दे, विजय में पूर्ण विश्वास रखते हुए बहादुरी और दृढ़ता के साथ उसे तब तक जारी रक्खे जब तक भारत की सरजमीं से दुश्मन को निकाल नहीं दिया जाता और भारतीय लोग फिर एक स्वतंत्र राष्ट्र नहीं हो जाते।"

आजाद हिंद की अस्थायी सरकार की ओर से हस्ताक्षरित —सुभाष चन्द्र बोस (राज्य के अध्यक्ष, प्रधान, युद्ध तथा विदेश मन्त्री), कै० श्रीमती लक्ष्मी (महिला संगठन), एस० ए० अय्यर (प्रकाशन व प्रचार मन्त्री), ले० क० ए० सी० चटर्जी (अर्थ-मन्त्री), सब ले० कर्नल अजीज अहमद, एन० एस० भगत, जे० के० भोंसले, गुलजारा सिंह, एम० जेड० कियानी, ए० डी० लोकनाथन, अहसानकादिर, शाहनवाज (सशस्त्र सेनाओं के प्रतिनिधि) ए० एम० सहाय (सेक्रेटरी) रासबिहारी बोस (सर्वोच्च सलाहकार) करीम गनी, देवनाथ दास, डी० एम० खान, ए० येलप्पा, जे० थिवी, सरदार ईशरसिंह (सलाहकार), ए० एन० सरकार (कानूनी सलाहकार)

इस अवसर पर दिए गए अपने भाषण में नेताजी ने भारत की तात्कालिक दुर्भिक्षपूर्ण स्थिति का चित्र खींचते हुए कहा—"लक्ष्य सिद्धि का उपयुक्त अवसर आ पहुंचा है और हमें विश्वास है कि हमारी फौज के भारत-भूमि पर अपना झण्डा गाड़ते ही

देश में वास्तविक क्रांति फूट पड़ेगी और उसके साथ ही भारत में ब्रिटिश शासन का खात्मा हो जायगा ।"

नेताजी के इस भाषण की समाप्ति के बाद ही सहस्रों कण्ठों से यह राष्ट्रीय गीत फूट पड़ा —

सब सुख चैन की बरखा बरसे भारत भाग है जागा,
पंजाब, सिन्धु, गुजरात, मराठा, द्राविड़, उत्कल, बंग,
चंचल सागर विन्ध्य हिमालय नीला जमना गंगा,

तेरे नित गुन गायें
तुझसे जीवन पायें
सब तन पाये आशा
सूरज बनकर जग पर चमके भारत नाम सुभागा
जय, हो जय, हो जय हो,
जय, जय, जय, जय हो।

सबके दिल में प्रीत बसाये तेरी मीठी बानी,
हर सूबे के रहने वाले हर मजहब के प्राणी,

सब भेदो-फरक मिटाके,
सब गोद में तेरी आके,
गूंथे प्रेम की माला,
सूरज बनकर जग पर चमके भारत नाम सुभागा,
जय हो, जय हो, जय हो,
जय, जय, जय, जय हो।

सुबह-सबेर पंख-पखेरू तेरे ही गुन गायें,
बास भरी भरपूर हवाएं जीवन में रुत लायें,

सब मिलकर हिन्द पुकारें,
जय आज़ाद हिन्द के नारे,
प्यारा देश हमारा,
सूरज बनकर जग पर चमके भारत नाम सुभागा,
जय हो, जय हो, जय हो,
जय, जय, जय, जय हो,
भारत नाम सुभागा ।

नेताजी ने इस अवसर पर यह भी घोषणा की कि आज़ाद हिन्द सरकार के प्रधान शिविर में भारत में युद्धोत्तरवर्ती पुनर्निर्माण की योजनायें तैयार करने के लिए एक विभाग स्थापित कर लिया गया है। २३ अक्तूबर १९४३ को जापान की सरकार ने इस अस्थायी सरकार को स्वीकार कर लिया और यह वचन दिया कि भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति के लक्ष्य की पूर्ति में वह उसकी सब सम्भव सहायता करेगी। २३ अक्टूबर को इस आशय की एक विज्ञप्ति भी जापान सरकार ने प्रकाशित की। जापानी सेना की सर्वोच्च कमान के स्टाफ अधिकारी मेजर जनरल काता क्यूरा ने यह स्वीकार किया है कि उन्होंने भारत पर आक्रमण की एक विशाल योजना बनायी थी और यह तय हो गया था कि हिन्दुस्तान का जितना भाग मुक्त किया जायगा वह आज़ाद हिन्द सरकार के सिपुर्द कर दिया जायगा आज़ाद हिन्द सरकार का ही उस पर शासन रहेगा और उक्त क्षेत्र में हाथ लगी सब कुछ सामग्री भी उसी को दे दी जायगी। २९ अक्टूबर को जर्मनी, आज़ाद बर्मा व फिलिपाइन की सरकारों तथा ८ नवम्बर को आयर, क्रोशिया, मंचूरिया, *नानकिंग, स्याम और इटली ने* उसकी स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार कर लिया। आयरलैंड के प्रजातन्त्रियों ने बधाई का सन्देश भेजा। आज़ाद

हिन्द फौज द्वारा मुक्त किए गए प्रदेश के लिए शासक तैयार करने की दृष्टि से एक शिक्षण शिविर की स्थापना की गई।

भारत के इतिहास में २५ अक्तूबर १९४३ का दिन सदा अविस्मरणीय रहेगा, जबकि आजाद हिन्द सरकार के मन्त्रिमण्डल की एक बैठक ने मध्यरात्रि में १२ बजकर ५ मिनट पर यह प्रस्ताव पास किया—'आजाद हिन्द की यह अस्थायी सरकार ब्रिटेन और अमेरिका के खिलाफ युद्ध की घोषणा करती है।" पदांग के म्युनिसिपल भवन के सामने हुई विराट सभा में जब नेताजी ने उक्त युद्ध की घोषणा की तो आकाश 'जय हिन्द' और 'आजाद हिन्द जिन्दाबाद' के नारों से गूंज उठा। उत्साह के आवेश में लोगों ने रस्से तोड़ दिए और लाखों हाथों ने आसमान में उठकर उक्त घोषणा का समर्थन किया। फौजी सिपाहियों ने अपने कन्धों पर बन्दूकें रख लीं और दूर दूर तक का आकाश 'दिल्ली चलो' के युद्ध घोष से फट गया। प्रात नेताजी ने सेना का निरीक्षण किया और सलामी ली। फौज को सम्बोधन करते हुए आपने कहा—"फौज का केवल एक लक्ष्य है—भारतमाता की स्वतन्त्रता और एक ही उद्दिष्ट स्थल है—दिल्ली का लाल किला। जो लोग इस के लिए तैयार न हों वे सेना से अलग हो जाय।" दुनिया ने देखा कि कई सैनिक अपनी जगह से न हिला। नेताजी फिर बोले—"आजाद हिंद फौज जिस दिन युद्ध के लिए कूच करेगी अपनी ही सरकार के नेतृत्व में करेगी। और जब यह भारत में प्रविष्ट होगी, तो मुक्त प्रदेशों का शासन स्वतः ही अस्थायी सरकार के हाथ में आ जायगा। भारत की मुक्ति आ० हि० फौ० के जरिये भारतीय प्रयत्न व बलिदान द्वारा ही प्राप्त की जायगी।"
३ दिन पूर्व २२ अक्तूबर को नेताजी ने झांसी की रानी रेजीमेंट शिक्षण

शिविर का उद्घाटन किया था और उपस्थित महिला को सम्बोधन करते हुए कहा—"हम अपने राष्ट्र के पुनर्निर्माण के कार्य में लगे हुए हैं। यह उचित ही है कि ऐसे समय महिलाओं में एक नवीन जीवन आन्दोलित हो।"

२८ अक्तूबर को टोकियो के कोनान क्लब में हुए एक पत्रकार सम्मेलन में नेताजी ने प्रकट किया—"आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार के निर्माण के साथ ही मेरे राजनैतिक जीवन का दूसरा स्वप्न पूरा हो गया है। राष्ट्रीय सेना के संगठन का स्वप्न तो पहले ही पूरा हो चुका था। अब केवल तीसरा स्वप्न पूरा होना शेष है और वह है—संघर्ष और स्वतन्त्रता की प्राप्ति। हमारी युद्ध की यह घोषणा कोई प्रोपगेंडा स्टंट नहीं है। अपने कार्यों से हम यह दिखायेंगे।'

[illegible] नवम्बर ४३ को टोकियो में वृहत्तर पूर्वी एशिया के राष्ट्रों का एक विराट सम्मेलन हुआ। नेताजी ने उसमें एक दर्शक के रूप में भाग लिया। बर्मा के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री डा० बा मा ने भारत की स्वतन्त्रता के लिए किये जा रहे संघर्ष में पूरी सहायता देने सम्बन्धी प्रस्ताव रखा। भारतीय समस्याओं के विषय में प्रामाणिक समझे जाने वाले डा० सुमेरी ओकावा ने घोषणा की कि पूर्वी एशिया की शांति के लिये भारत की स्वतन्त्रता अनिवार्य है। इस अवसर पर जापान के प्रधानमन्त्री जनरल तोजो ने अण्डमान और निकोबार द्वीप आजाद हिंद की अस्थायी सरकार को सौंपने की घोषणा की। इसके बाद ही नेता जी ने इन दोनों द्वीपों का नाम क्रमशः 'शहीद' और 'स्वराज' रख दिया। कर्नल लोकनाथन को वहां चीफ कमिश्नर बनाकर भेज दिया गया। शासन के सुव्यवस्थित रूप से संचालन के लिए उनके साथ मेजर अल्वी,

ले० सुभानसिंह, ले० मुहम्मद इकबाल और श्रीनिवासन भी गये। मेजर आलवी के आधीन शिक्षा-विभाग, ले० सुभानसिंह के आधीन लगान तथा कर विभाग और ले० मुहम्मद इकबाल के आधीन पुलिस तथा न्याय विभाग थे। नेताजी के पास यहां से नियमपूर्वक सारे कार्य व स्थिति की रिपोर्ट भेजी जाती थी। जापान सरकार ने यद्यपि यह दोनों द्वीप आजाद हिंद सरकार को दे दिये थे, पर यहां की पुलिस व्यवस्था में वह बराबर हस्तक्षेप करती रही और इस विषय पर वहां के चीफ कमिश्नर कर्नल लोकनाथन का जापानी सरकार से हमेशा संघर्ष रहा।

बर्मा में जियावाड़ी नाम की ५० वर्गमील की एक छोटी सी रियासत थी। जापानी सेना द्वारा बर्मा विजय के बाद-जापान सरकार ने वह समस्त इलाका आजाद हिंद सरकार को सौंप दिया था, क्योंकि इसमें हिन्दुस्तानियों की आबादी लगभग १८ हजार थी। आजाद हिंद सरकार ने यहां का शासन सूत्र अपने हाथों में लेते ही वहां एक गवर्नर के नीचे कृषि, माली, शिक्षा, प्रचार तथा प्रकाशन, स्वास्थ्य, भारतवासियों के हितार्थ रक्षा तथा भागे हुए हिन्दुस्तानियों की सम्पत्ति की देखभाल करने के लिये अनेक विभाग स्थापित कर दिये गये। यहां चीनी, सूत, कम्बल आदि बनाने की फैक्टरियां थीं और उनका सारा माल तथा उस क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली सब सामग्री अस्थायी सरकार को सौंप दी जाती थी। आजाद हिंद फौज का एक शिक्षा शिविर भी यहां स्थापित किया गया।

इधर सम्पूर्ण मलाया में नेताजी के इस असाधारण प्रभाव, संगठन शक्ति एवं कार्यक्षमता का फल यह हुआ कि क्योनान, जोहोर और मलक्का की भारतीय आबादी का ५४, ६६ और ६० प्रतिशत

भाग आजाद हिंद लीग का सदस्य बन गया तथा मलाया भर में फैली उसकी सब शाखाओं में सामाजिक सेवा, राजनैतिक प्रचार भर्ती, धन संग्रह व सांस्कृतिक कार्य बड़े उत्साह और वेग से किया जाने लगा। हिंदुस्तानी भाषा का शिक्षा के लिए मलाया के अन्तर्वर्ती प्रदेश में, जहां की अधिकांश आबादी तामिल थी, पाठशालाएं खोल दी गईं। कुआलालम्पुर के रेडियो से हिन्दुस्तानी पाठ ब्राडकास्ट किए जाने लगे। लीग के सदस्यों की संख्या ? लाख ६५ हजार तक जा पहुंची। लीग का एक सेवा विभाग स्थापित कर दिया गया। दैनिक 'पूर्ण स्वराज्य' और साप्ताहिक 'नव हिंद' प्रकाशित किए गए और वे खूब लोकप्रिय हुए। इस सम्पूर्ण संगठन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसमें काम करने वाले सब व्यक्ति एक दूसरे को भाई समझते थे और उनमें जाति, धर्म या विश्वास की दृष्टि से कोई भेद-भाव नहीं था। शिक्षा शिविरों में रहने वाले तथा आजाद हिन्द फौज के हिन्दू मुस्लिम सब सदस्य एक साथ बैठकर एक ही पंक्ति में भोजन करते थे। प्रथम शाकाहारियों को भोजन परोसा जाता था और बाद में जो लोग आमिषभोजी थे उनको आमिष परोसा जाता था। जाति व धर्मगत इस भेद भावना को निर्मूल करने में नेताजी और श्री रासबिहारी बोस का बहुत बड़ा हाथ था।

नेताजी ने आजाद हिन्द सरकार के मातहत जिस आजाद हिन्द फौज की स्थापना व संगठन किया था, उसकी शक्ति दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी। डा० नाग ने, जो आजाद हिन्द फौज के कानूनी सलाहकार थे, इसका विधान बनाया था और डा० अहसान कादिर इसके प्रमुख संगठनकर्ता नियत किए गए थे। मेजर जनरल शाह नवाज को चीफ आव स्टाफ के स्थान पर आजाद हिन्द फौज का सुप्रीम

कमाण्डर नियुक्त कर दिया गया था। तबतक कर्नल सहगल मिलिटरी सेक्रेटरी का कार्य करते थ। सार फौजी सगठन को निम्न ६ भागों में विभक्त कर दिया गया था—

(१) प्रधान शिविर
(२) हिन्दुस्तानी फील्ड ग्रुप
(३) गोरिल्ला गुरिल्ला ग्रुप,
(४) स्पेशल सर्विस ग्रुप,
(५) गुप्तचर विभाग
(६) सैन्य सहायक ग्रुप

हिन्दुस्तानी फील्ड ग्रुप में न० १, २, ३ पैदल पल्टन, न० १ भारी तोपखाना पल्टन, न० १ इजीनियरिंग कम्पनी, न० १ सिगनल कम्पनी, न० १ मैडिकल कम्पनी और न० १ ट्रान्सपोर्ट पल्टन आदि शामिल थीं। गोरिल्ला गुरिल्ला ग्रुप में ३ रेजीमैंट शामिल थे—गांधी गुरिल्ला रेजीमैंट, आजाद गुरिल्ला रेजीमैंट और नेहरू रेजीमैंट। दो रेजीमैंटों का निर्माण और किया गया था जिनमें से एक में प्रशस्त भारतीय युद्धबन्दी तथा दूसरे में पूर्णत नागरिक थे। जो भारतीय युद्धबन्दी आत्म समर्पण करके आजाद हिंद फौज में शामिल हो गए थे उनके सेनापति क० जिलानी थे। बादमें ये आजाद हिंद फौज के जनरल आफिसर कमांडिंग बना दिये गये थे। ८ से १२ वर्ष की आयु के बालकों की एक बाल सेना खड़ी की गयी थी जिसके एक विभाग का नाम जांबाज बाल सेना रखा गया था। ये बालक अत्यन्त निर्भीक और साहसशील थे। जीवन के प्रति उनके हृदयों में कोई मोह नहीं था। नेताजी के वीरत्वपूर्ण आह्वान और असाधारण मधुर व्यवहार ने इनको सचमुच ही 'जांबाज' बना दिया था। १९४४ में

जब आज़ाद हिन्द फौज का ब्रिटिश सेना के साथ युद्ध हुआ तो ये मासूम बच्चे अपनी पीठों पर सुरंगें बांधकर दुश्मन के टैंकों में अड़ जाते थे और जब शत्रु के टैंक उनकी लाशों पर होकर गुज़रते थे तो उनके पर वह जाते थे। आज़ाद हिन्द फौज का झण्डा हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय झण्डा ही था। उसके सैनिक जो वर्दी पहनते थे वह भी हिन्दुस्तानी थी—जापानी नहीं। सिर्फ उन पर आज़ाद हिन्द फौज के बिल्ले लगे रहते थे। उसके अफसरों के वेतन के सम्बन्ध में लाल किले की फौजी अदालत में सरकारी गवाह ले० नाग ने बताया था कि लेफ्टिनेंट को ८०), कप्तान को १५०) मेजर को २००) (बमा ३१ २३४), ले०-कर्नल को ३२०) और ४००) मिलते थे। इतना कम वेतन प्राप्त होने पर भी सब अफसर व सैनिक पूर्णतया सन्तुष्ट थे। उनके हृदयों में एक ही भावना काम कर रही थी कि वे अपने देश का उद्धार करेंगे और उसके लिए मार्ग की सब विघ्न बाधाओं तथा कष्टों को खुशी खुशी स्वीकार करेंगे। आज़ाद हिन्द फौज के इन सैनिकों का चरित्र अत्यन्त उच्च था। देश के लिए सब बलिदान करने की उत्कट भावना ने उनकी स्वाभाविक यौन भावना को भी मूर्छित किया हुआ था। वे जहां कहीं जाते थे स्त्रियों को मां बहिन के रूप में अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखते थे। लाल किले की फौजी अदालत में हुई सरकारी गवाहियों में से किसी गवाही से यह सूचित नहीं होता कि न कभी एक भी स्थल पर पथभ्रष्ट हुए हों, गांव लूटे हों और स्त्रियों के सतीत्व का अपहरण किया हो। झांसी की रानी फौज की महिलाएं उनके साथ ही काम करती थीं पर अनुशासन और नियन्त्रण इतना कठोर था और देश प्रेम की भावना इतनी प्रबल थी कि कोई सैनिक महिलाओं को आंख उठाकर भी नहीं देखता था। नेता जी ने जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण ही बदल दिया था। उनके लिये

जो मनोरञ्जन के साधन उपस्थित किये जाते थे वे भी दोषहीन होते थे। रेडियो में उन्हें फौजी तराने सुनाए जाते थे और 'चलो दिल्ली' 'भारतपुत्र' और 'जलियाँवाला बाग' के नाटक दिखाए जाते थे। 'जेलान-सम्मेलन' आदि की फिल्म भी तैयार करके दिखाई जाती थीं।

आज़ाद हिंद फौज के इस संगठित रूप और प्रभाव को देखकर जापानी चौंके। नेताजी को जापान आने का निमंत्रण देने से पूर्व उन्हें यह आशा नहीं थी कि वे इस प्रकार शुद्ध राष्ट्रीय आधार पर कार्य करेंगे। आज़ाद हिंद फौज की दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई लोकप्रियता तथा आज़ाद हिन्द लीग की बढ़ती हुई सदस्य-संख्या उन्हें भयभीत करने लगी थी और उनके मन एक अज्ञात आशंका से आच्छन्न हो गए थे कि कहीं यह फौज जापानी सेना से भी अधिक संगठित और साधन सम्पन्न न बन बैठे। इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि आज़ाद हिन्द फौज की सदस्य-संख्या ५० हजार से अधिक नहीं बढ़ायी जा सकी। जापान के तत्सम्बन्धी आदेश की अवहेलना करके भी सेना की संख्या बढ़ाना सम्भव नहीं था, क्योंकि उनको शस्त्रास्त्र व अन्य साधन सामग्री जुटाने के लिए जापान-सरकार का ही मुँह ताकना पड़ता था और यह आज़ाद हिन्द फौज के बढ़ते हुए प्रताप को देखकर अपने ही सैनिकों को सामान न दे सकने तथा नागरिकों की आवश्यकता पूर्ति न कर सकने के बहाने लगा दिया करती थी। स्थिति यह थी कि एक बार लाखों की रानी फौज के लिए कम्बल चोर बाजार से खरीदने पड़े थे। यह आज़ाद हिन्द फौज एक पूर्णतः स्वतन्त्र और स्वयंसेवक सेना थी। शिक्षक या अधिकारी के रूप में कोई जापानी उसमें नहीं था। उसके कार्यों में किसी दूसरे का हस्तक्षेप भी नहीं था। जापानी सेना के समान ही उसके साथ भी व्यवहार किया जाता था। इतना अवश्य था कि शस्त्रास्त्रों तथा अन्यान्य युद्ध सामग्री के लिए उन्हें

जापानियों पर आश्रित रहना पड़ता था, पर आज़ाद हिन्द सरकार उस सब सामान की एक एक पाई जापान सरकार को चुकता कर देती थी। इस प्रकार आज़ाद हिन्द फौज ने सम्पूर्ण मलाया में अपनी शक्ति का सिक्का कायम कर लिया था।

इस आज़ाद हिन्द फौज का सम्पूर्ण नियन्त्रण जिस आज़ाद हिन्द सरकार के हाथ में था उसका दबदबा सारे पूर्वी एशिया में छाया हुआ था। नेताजी ने अपनी कार्यक्षमता और व्यक्तित्व से जापान सरकार के ऊपर भी ऐसी छाप बिठा दी थी कि वे उनके किसी काम में हस्तक्षेप करने की हिम्मत नहीं करती थी और उनकी सरकार के साथ समान सरकार का व्यवहार करती थी। एक बार की घटना है कि एक मलायावासी भारतीय को, जिसका नाम अनन्त राम थी पर जिसने आज़ाद हिंद फौज के लिए बड़ा धन से इन्कार कर दिया था, जापानियों ने गिरफ्तार करने और उसकी सारी सम्पत्ति को ज़ब्त करने का आदेश दे दिया। वह दौड़ता हुआ नेताजी के पास आया और उनके पैरों पर गिर कर प्राणदान याचना की। सुभाष बाबू ने सामान्य भरे शब्दों में उसे सांत्वना दी और पास पड़े फोन को उठाकर जापानी सर्वोच्च विभाग को फोन कर दिया कि जिस व्यक्ति की गिरफ्तारी का आदेश दिया गया है वह हमारा आदमी है। इतने मात्र से उसकी गिरफ्तारी व सम्पत्ति ज़ब्ती का आदेश रद्द कर दिया गया।

इसी प्रकार जापानियों ने एक डाक्टर को उसकी पत्नी के अंग्रेज होने के कारण सन्देह में गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया था। जब यह मामला नेताजी के सम्मुख पेश हुआ तो उन्होंने जापानी अधिकारियों को लिखा—'यदि वह वस्तुतः खुफिया हो तो उसे गोली से उड़ाया जा सकता है, अन्यथा एक भारतीय नागरिक होने के नाते रिहा कर

देना चाहिए। वह उसी समय रिहा कर दिया गया। ऐसी ही एक और घटना है। नेताजी ने एक डाक्टर को रिहा करने का आदेश जारी कर दिया था। जापानी पुलिस अधिकारी ने इस पर आपत्ति की और कहा सम्राट् बोसको हमारे मामलेमें हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार नहीं है।' इस पर जब मामला उच्च जापानी अधिकारियों के पास पहुचा तो पुलिस अधिकारी ने नेताजी से क्षमा मांगते हुए मुक्ति का आदेश जारी कर दिया। इसी प्रकार नेताजी ने शोनान में खुफिया होने के सन्देह में गिरफ्तार ४०० भारतवासियों को जापानी जेल से मुक्त कराया था।

नेताजी का प्रभाव अद्भुत था। अपने अधिकार का प्रयोग करने में वे कभी न चूकते थे। इसी के बल पर उन्होंने आजाद हिंद सरकार को सब ही धुरी देशों की दृष्टि में अत्यन्त सम्माननीय बना दिया था। २ जून १९४४की घटना है। आजाद हिंद सरकारका प्रधान शिविर रंगून आ चुका था। जापानी सरकार ने अपना एक राजदूत नियुक्त करके भेजा था। रंगून पहुचने पर जब उसने नेता जी से भेंट करनी चाही तो उन्होंने उसे यह कहला भेजा कि अपने राजदूत होने के प्रमाणपत्रों को आ० हिंद सरकार के परराष्ट्रविभाग को भेज दो, जिससे कि उनकी जाच की जा सके। उत्तर मिला–'प्रमाण पत्रसो टोकियो ही छूट गए हैं।' नेताजी दृढ़ रहे और कहला भेजा–'प्रमाण पत्रोंकी जांच के बिना मुलाकात असम्भव है'। इस पर प्रमाण-पत्र भेजने के लिए टोकियो तार दिया गया और उनके आने तक उसे भेंट के लिए प्रतीक्षा करते रहने पड़ी। लाल किले की फौजी अदालत में गवाही देते हुए तत्कालीन जापानी राजदूत श्री हाचिया ने उपर्युक्त घटना की वास्तविकता को स्वीकार किया है।

आजाद हिंद सरकार की प्रतिष्ठासूचक इसी प्रकार की एक घटना

ओर है। भारतभूमि पर आक्रमण से पूर्व युद्ध-संचालन के लिए एक युद्ध सहयोग संघ बनाने की योजना थी। जापान का प्रस्ताव था कि इसका अध्यक्ष जापानी हो। नेताजी ने इसका विरोध किया और कहा कि भारतीय जनता को यह बात स्वीकार नहीं हो सकती, इसलिए बिना किसी अध्यक्ष के समानता के आधारपर दोनों सरकारों के प्रतिनिधि मिला करें। लाल किले की फौजी अदालत में गवाह जनरल लोगनाथन ने इस घटना का उल्लेख करते हुए कहा था कि आखिर कोई भी अध्यक्ष नियुक्त नहीं किया गया। इसी प्रकार की एक अन्य घटना का उल्लेख करते हुए जनरल लोगनाथन ने बताया कि जापान-सरकार का यह आग्रह था कि रसद विभाग के मंत्रियों की नियुक्ति से पूर्व उनके नाम बता दिये जायें। श्री बोस ने इसका विरोध किया और कहा कि—"यह मेरा अपना विषय है। यह और बात है कि मैं नियुक्ति के बाद सौजन्यवश उनका नाम आपको प्रकट कर दूं।" श्री बोस ने जापान सरकार को यह भी स्पष्ट कर दिया था कि मुक्त प्रदेशों में कोई जापानी बैंक नहीं खुल सकेगा और वहां बैंक भी सिर्फ आजाद हिन्द बैंक होगा।

नेताजी द्वारा स्थापित यह आजाद हिन्द सरकार एक वास्तविक सुसंगठित सरकार थी। अकेले मलाया में २ लाख ३० हजार भारतीयों ने लिखित रूप से उसके प्रति अपनी निष्ठा प्रकट की थी। उसका प्रधान शिविर सिंगापुर था। उसके पास ब्राडकास्टिंग स्टेशन तथा प्रचार के अन्य साधन भी थे। उसका सिविल व मिलिटरी गजट नियमपूर्वक निकलता था। भारत का राष्ट्रीय तिरंगा झण्डा उसका झण्डा था उसकी आजाद हिन्द फौजका बैज डेढ़ इंच लम्बा और एक इंच चौड़ा था। उसके ऊपरी भाग में आई० एन० ए० अंग्रेजी में लिखा रहता था। एक कोने में भारत का मान चित्र और बीच के भाग में रोमन लिपि में

'इत्तिफाक' 'इत्माद' और 'कुर्बानी' शब्द लिखे रहते थे। दो प्रकार के ध्वज भी थे, जिनमें एक पर शेर व तिरंगा झण्डा का चिन्ह था। दूसरे पर नेताजी का फोटो था।

उसके पास अपनी सेना थी, शासन के लिए अपना प्रदेश था, और अर्थ-व्यवस्था के लिए आमदनी के स्रोत थे। आजाद हिन्द फौज तथा आजाद हिन्द सरकार के खर्चों की पूर्ति के लिए जनता पर अनिवार्य टैक्स नहीं लगाया गया था। स्वेच्छा से ही सब लोग सरकारी कोष में दान करते थे और उसी से सब कार्य चलता था। १९४३ के अन्त में इस प्रकार स्वेच्छा से दी गई धनराशि ७७०७०६४७ डालर (लगभग २॥ करोड़) तक पहुंच गई थी। इसमें हीरे जवाहरात व चांदी सोने के उन बर्तनों की कीमत शामिल नहीं है जो उपहार के रूप में दिये जाते थे। उनकी कीमत भी कम से कम ८६ हजार डालर थी।

आजाद हिन्द सरकार के १६ विभाग थे। भाषा हिन्दुस्तानी थी और लिपि रोमन। 'जय हिन्द' उनकी सलामी थी। सब लोग जय हिन्द' कह कर परस्पर मिलते थे।

अभी हाल में नेता जी जब पेनांग गए तो उन्होंने एक सार्वजनिक सभा में आजाद हिन्द सरकार के लिए चन्दे की अपील की। भीड़ में से एक जवान घरेलू नौकर निकला और उसने नेताजी के चरणों में चांदी का एक फूलदान उपहारस्वरूप भेंट करते हुए कहा— "मेरे पास यही एक बेशकीमती चीज है और वह भी मेरा सदा के लिए वियुक्त माँ की पवित्र स्मृति से अनुप्राणित है।" नेता ने विशाल जन समुदाय को उस फूलदान का इतिहास बताया और उसे नीलामी पर चढ़ा दिया। पहली बोली ५१ हजार डालर से

की बोली गई और फिर उसके बाद बोली पर बोली चढ़ती गई। आखिर यह फूलदान एक लाख १ हजार डालर में बिक गया।

संसार के इतिहास में शायद यह पहली ही सरकार होगी जिसने अपनी प्रजा पर किसी प्रकार का बाधित टैक्स नहीं लगाया हुआ था और जिसकी सारी अर्थ व्यवस्था उस प्रकार के दानों और उपहारों के बल पर चलती थी।

नेता जी का जादू

पूर्वी एशिया के आकाश में नेताजी की लोकप्रियता और ख्याति का सूर्य मध्यान्ह के सूर्य के समान चमक रहा था। भारतवर्ष की मुक्ति के लिए उन्होंने अपने अध्यवसाय और कर्मनिष्ठा से जो वातावरण उत्पन्न कर दिया था उससे सम्पूर्ण मलायावासियों का यह विश्वास हो चला था कि उनका मसीहा आ गया है और अब मुक्ति का दिन निकट है। नेताजी के प्रति जनता के श्रद्धा विश्वास का क्या पूछना है। उनके एक एक शब्द पर हजारों जवान अपनी जान लुटा देने को उद्यत थे और उनके पसीने की एक बूंद पर रक्त की नदियां बहने को तैयार रहती थीं। मलाया, थाईलैंड इत्यादि के विविध स्थानों पर जब उन्होंने दौरे किये तो उनके एक एक शब्द पर हजारों की सम्पत्तियां उनके चरणों पर लुटा दी गईं। क्या यह कुछ कम आश्चर्य की बात है कि वे जिस सभा में भाषण देते थे उसमें ही उन्हें आजाद हिंद फौज और आजाद हिंद सरकार के लिए छः छः सात सात लाख रुपया मिल जाता था।

स्वागत की जा रही है। नेताजी के यहां पहुंचने के बाद से उनके ऊपर उपहारों और लक्ष्मी की वर्षा हो रही थी पर वे उससे सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने आजाद हिन्द सरकार [illegible] में रंगून के धनिक व्यापारियों को आमन्त्रित किया और कहा —

'जब आजाद हिन्द फौज को विजय के मार्ग पर कदम बढ़ाना था रास्ते में ही अपने रक्त की अन्तिम बूँद बहा देने और पीछे फिर कर न देखने की शिक्षा दी जा रही है, अमीर लोग मुझसे यह पूछ रहे हैं कि उनसे १० प्रतिशत सम्पत्ति अपेक्षित है या ५ प्रतिशत। जो इस प्रकार प्रतिशत की बात करते हैं उनसे मैं यह पूछता हूँ कि क्या हम अपने सैनिकों को यह कह सकते हैं कि वे लड़ाई में केवल अपना १० प्रतिशत खून बहायें

"गरीब लोग हजारों की संख्या में भावना से भरे हुए दिल लेकर आते हैं और हर चीज देने को उतावले रहते हैं। पहरेदार, धोबी, नाई, छोटे छोटे दुकानदार और ग्वाले अपना सब कुछ देने के लिये आते हैं। उनमें से कइयों ने न केवल मुझे अपनी जेब के बचे खुचे पैसे दे दिये हैं अपितु वे सेविंग्स बैंक की वे किताबें भी मुझे दे गये हैं जिनमें उनके जीवन की सारी संचित सम्पत्ति जमा है। मलाया के भारतवासियों में क्या ऐसे धनी नहीं हैं जो इन्हीं भावनाओं से आगे बढ़कर यह कह सकें—"भारत की स्वतन्त्रता के लिये यह लीजिये हमारी बैंक पुस्तक।'

'एक राष्ट्र के रूप में भारतवासी आत्मबलिदान में विश्वास करते हैं। हिन्दुओं में हमारे सामने संन्यासियों और मुसलमानों में फकीरों का आदर्श उपस्थित है। ३८ करोड़ मानवीय

…त्मा की मुक्ति से बढ़ कर भी क्या कोई पवित्र महान, और …ध्य उद्देश्य हो सकता है ?

… 'मलाया में मैं १० करोड़ रुपये चाहता हूँ, जो मलाया की …ल भारतीय सम्पत्ति का दशमांश भी नहीं है।

इसके बाद जब धन एकत्र किया जाने लगा तब वहीं हो ७० लाख …लर एकत्र होगए और अगले २४ घण्टों में ही एकत्रित धन राशि की …ख्या १ करोड़ ३० लाख डालर तक जा पहुंची।

आजाद हिन्द फौज के प्रेसिडेन्ट के० मुहम्मद अब्दुल्ला ने राय- …ादा हसरात एम० एल० ए० के निवासस्थान पर दिए गए एक प्रीति भोज के अवसर पर यह प्रकट किया कि नेताजी की लोकप्रियता १६ ४ में पराकाष्ठा तक पहुंच गई थी। २३ जनवरी १६४४ को उनके जन्मदिन पर उनका एक चित्र ६५०००) में बिका। नेताजी के व्याख्यानों से प्रभावित होकर सिंगापुर के धन कुबेर श्री हबीब ने अपनी १ करोड़ ६७ लाख रुपए की सम्पत्ति उनके हवाले कर दी। ये स्वयं आजाद हिन्द फौज में भर्ती होगए और उनकी दोनों पुत्रियां स्वयं- सेविकाएं बन गईं। यहां यह बात स्मरणीय है कि जिन लोगों को आजाद हिन्द फौज में विशेष अभिरुचि नहीं थी उन्हें नेताजी 'हबीब मिक्सचर' लेने को कहा करते थे। श्री हबीब के इस अद्भुत त्याग पर नेताजी ने उन्हें सेवक ए-हिन्द की उपाधि देकर सम्मानित किया था। इसी प्रकार एक मद्रासी महिला द्वारा भी अपना सर्वस्व आजाद हिन्द सरकार के लिए अर्पण कर देने पर नेताजी ने अत्यन्त गद्गद भाव से उसे सेवक-ए हिंद की उपाधि दी थी।

२६ जनवरी ४४ का दिन था। मलाया की तरह सारे बर्मा के …

प्रदेश में स्वतन्त्रता दिवस मनाया जा रहा था। नेताजी उन दिनों रंगून में थे। वहाँ एक विराट सभा का आयोजन किया गया। आरम्भ में नेताजी का पुष्पमालाओं से स्वागत किया गया। अपने भाषण के सारे समय वे उन मालाओं को पहने रहे। भाषण की समाप्ति पर उन्हें न जाने क्या सूझा। कह उठे—"क्या कोई इस माला का खरीददार है? इसकी सारी कीमत आजाद हिन्द फौज फण्ड में दे दी जायगी।'

भीड़ में से आवाज आयी—'एक लाख रुपया।' कुछ ही मिनटों में बोली २ लाख, ३ लाख, ४ लाख तक जा पहुँची। एक लाख की बोली बोलनेवाला पंजाबी युवक चिल्लाया—५ लाख। पर बोली और भी आगे बढ़ी—६ लाख।—७ लाख।

पंजाबी युवक धैर्य खो बैठा। मुख पर आन्तरिक संघर्ष के चिह्न अंकित थे। हार वैसा ही जाने को था कि वह मंच की ओर लपका और चिल्लाया—"मेरी सारी सम्पत्ति। एक एक पाई जो मेरी अपनी है।" सुभाष बाबू ने उस हाँफते हुए युवक को दोनों हाथों से पकड़ लिया और कहा—"लो हार तुम्हारा हुआ। तुम्हारे जैसे देशभक्त युवक हमारी फौज द्वारा अर्जित किये जाने वाले गौरव के अधिकारी हैं।"

परन्तु युवक ने जैसे सुना ही नहीं। उसने हार को पकड़ लिया, उसे अपनी आँखों और छाती के साथ चिपका लिया और चिल्लाया—"अब मैं सब भाँति सम्पत्ति से मुक्त हो गया हूँ। मैं फौज में भर्ती होना चाहता हूँ। अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये मैं अपने जीवन को अर्पित करता हूँ।" तब वह युवक सभा से बाहर

निकला तो उसकी आँखें चमक रही थीं और मुख पर प्रसन्नता की ज्योति थी।

रंगून का एक करोड़पति मुस्लिम व्यापारी नेताजी से मिलने आया। नेताजी आ० हिन्द सरकार के बैंक की स्थापना के लिये चिंतित थे। उन्होंने इस समस्या को उसके सामने रखा और कहा कि इम्फाल का पतन होते ही हमें वहां अपना सिक्का चलाना होगा। बैंक के बिना यह कैसे सम्भव है?

'आपको शुरू में कितने रुपए की आवश्यकता है?' प्रश्न हुआ।

"५० लाख रुपया काफी होगा"—उत्तर मिला।

'ओह! बस! इतना ही! यह लीजिए ३० लाख रुपए। २० लाख रुपए मैं आपको एक सप्ताह के भीतर दे दूंगा।"—करोड़-

१५ दिन के भीतर बैंक स्थापित हो गया और बर्मा रजिस्ट्रेशन कानून के अनुसार उसकी रजिस्ट्री कराली गई। सब व्यापारी उसे स्वीकार करने लगे। जनता द्वारा उसका इतना स्वागत किया गया कि विभिन्न स्थानों पर उसकी शाखाएं खोल दी गईं। श्री एस० ए० अय्यर, श्री दीनानाथ, श्री एस० एम० रशीद श्री एच० आर० वेलाड, श्री एच० ई० मेहता और कर्नल मलगप्पन इस बैंक के डाइरेक्टर नियुक्त किये गये। बर्मा से कुल १५ करोड़ तथा मलाया से ५ करोड़ रुपया इस बैंक के लिए दिए जाने की बात डाइरेक्टर दीनानाथ ने फौजी अदालत के सामने कही है। यद्यपि इस सरकारी बैंक में धन एकत्र करने के लिए आम जनता पर टैक्स नहीं लगाया गया था परन्तु व्यापारियों की एक कमेटी बनाकर धनी हिन्दुस्तानियों की कुल सम्पत्ति का अनुमान लगाने तथा उसका १० प्रतिशत वसूल करने की व्यवस्था करली गई थी। बर्मा में 'नेताजी फण्ड कमेटी' स्थापित करके

चंदा भी जमा किया गया था। मलाया में भी इसी प्रकार की एक कमेटी स्थापित की गई थी। इस चंदे में गेहूं, आटा, चावल व कपड़ा आदि सभी कुछ मिलता था। कहा जाता है कि आज़ाद हिंद फौज के खर्चे के लिए यह वर्ग प्रतिमास १० लाख रुपया देता था। इसके रेकार्ड को अब भारत-सरकार ने बंद कर दिया है और इसके अवशिष्ट ३५ लाख रुपए हजम कर लिए बतलाये जाते हैं।

मई मास की बात है। नेता जी श्योनान जाने के लिए रंगून के हवाई अड्डे पर उपस्थित थे। चेहरे पर चिंता की हलकी छाया थी। विदा करने के लिए आए लोगों में से श्री बेट्टियर ने उनकी इस चिन्ता का कारण पूछा। नेताजी ने कहा—"अवस्था चिंतनीय है। मुझे फौज के लिए ७० लाख रुपया चाहिए।" १० मिनिट में उसी स्थान पर ७० लाख रुपया एकत्र कर दिया गया।

नेताजी की वाणी में जादू था। इसीलिए शायद उनका एक भी बोल व्यर्थ नहीं जाता था। देवताओं की वाणी की तरह वह सदा ही सार्थक सिद्ध होता था। किसी एक व्यक्ति के प्रति भारतीयों के हृदय में इतनी ममता होने का सौभाग्य श्री सुभाष को छोड़कर शायद ही किसी भारतीय को मिला होगा।

आकर्षक व्यक्तित्व व तापसी दिनचर्या

जहां नेताजी की वाणी में जादू था, वहां व्यक्तित्व में अद्भुत आक र्षण भी । गौर वर्ण, भव्य आकृति और प्रकाण्डवपु के पीछे उनके हृदय में जिस सरलता, साधुता और स्नेह का सागर हिलोर ले रहा था वह सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को बरबस ही अपनी ओर खींचे लेता था । क्या मर्द क्या औरत— बच्चे, बूढ़े, जवान सभी उनके अद्भुत व्यक्तित्व और अलौकिक प्रतिभा से प्रभावित थे ।

आज़ाद हिन्द सरकार के प्रधान होते हुए भी उनका जीवन अत्यन्त सादगीपूर्ण था । किसी प्रकार की बाह्य सज्जा के शौक से वे सर्वथा शून्य थे । उनका सारा समय प्रायः भारतमाता की मुक्ति की साधना में ही बीत जाता था । उनके एक एक बोल पर लाखों मोती बिखर जाते थे, पर वे उन सबसे सर्वथा निरपेक्ष थे । प्राचीन ऋषिमुनियों की तरह वे कामिनी और कांचन के प्रति पूर्ण विरक्त थे । आपके जन्म दिवस पर जब एक बर्मी सौदागर ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि इस सुअवसर पर उन्हें हीराजटित स्वर्ण मुकुट पहनाया जाय, सुभाष बाबू ने उस

प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। यद्यपि नेताजी अत्यन्त प्रतिभाशाली और मनस्वी थे पर भावुकता भी उनमें कूट कूट कर भरी थी। एक बार सन १९४३ के दिसम्बर मास में वे फिलिपाइन्स की राजधानी मनीला गए। वहां समुद्र तट पर स्थित जोज़ रिज़ाल की प्रस्तर मूर्ति के सामने बड़ी देर तक वे ध्यानावस्थामें खड़े रहे। इसी प्रकारकी एक घटनाका मे० शाहनवाज़ ने वर्णन किया है। कहते हैं कि फरवरी ४४ में जब नेताजी बर्मा आये तो वहां के जापानी अफसरों ने हवाई अड्डे पर शानदार स्वागत किया और वह उन्हें अपने घर पर ले जाकर मेहमान बनाने की आशा में था, परन्तु विमान से उतरते ही वे सम्राट बहादुरशाह के मकबरे पर गए और वहां अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए रो पड़े। उन्होंने तब घोषणा की कि आजाद हिन्दुस्तान में बहादुरशाह के अवशेषों को यहां से उठाकर दिल्ली ले जाया जायगा और लाल किले में इनका मकबरा बनाया जायगा। इसके लिए वहीं दस लाख रुपया भी एकत्र किया गया।

इतनी भावुक प्रकृति होने पर भी उनका चरित्र चट्टान की तरह दृढ़ था। सिद्धान्त के पीछे वे मर मिटने वाले थे। उनकी भावना के जोश को बुद्धि तथा आदर्श के प्रति निष्ठा ने संयत किया हुआ था। एक स्वतन्त्र सरकार के सर्वोच्च पद पर होते हुए भी उनमें अभिमान की बू नहीं थी और प्रभुत्व की लालसा से वे सर्वथा शून्य थे। मेजर जनरल शाहनवाज़ ने बताया है कि जब वे टोकियो सम्मेलन में गए तो जापान के तत्कालीन प्रधानमन्त्री जनरल तोजो ने उनकी क्षमता और व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कहा कि हमें उम्मीद है कि सुभाष बाबू स्वतन्त्र भारत के प्रथम डिक्टेटर होंगे। तब नेताजी ने एक दम उठकर कहा—"भारत का कौन व्यक्ति डिक्टेटर होगा और स्वतन्त्र

भारत में क्या शासन-प्रणाली होगी, इसका निश्चय आप नहीं भारत की जनता करेगी।"

नेताजी जहाँ एक मान हुए राजनीतिक नेता थे वहाँ उनका सामरिक ज्ञान भी अत्यन्त गहरा था। मलाया थाईलैंड और बर्मा में घूम घूमकर आजाद हिंद सेना का संगठन और युद्ध शुरू होने पर मोर्चा सम्भालने सम्बन्धी निर्देश तक वे स्वयं देते थे। कप्तान शाहनवाजने यह प्रकट किया है कि जापानी लोग उनकी इस सामरिक विचक्षणतासे इतने अधिक प्रभावित थे कि वे आक्रमण योजनाओं तथा सेनाओं को नियुक्त करने के सम्बन्ध में उनसे परामर्श लिया करते थे। लंका व बंगाल पर आक्रमण करने की जापानी योजना उनके कहने पर ही स्थगित कर दी गई थी। उनकी इस संगठन और सामरिक योग्यता से प्रभावित होकर गांधीजी ने उनके प्रति आदर व्यक्त करते हुए यह प्रकट किया है—'अब तक मैं उनकी राजनैतिक क्षमता से ही परिचित था, पर वे इतने सफल संगठनकर्ता और सेनापति हो सकते हैं यह मुझे उनके विदेश में किये गये काम से ही मालूम हुआ।'

नेताजी का दैनिक जीवन भी अत्यंत तपस्यापूर्ण व व्यस्त था। वे दिनरात काम में जुटे रहते थे। रातको ११ बजे सोना और सुबह ४ बजे उठना उनका नियम था। उठते ही वे आ० हि० फौज का राष्ट्रीय गान गाया करते थे। कार्याधिक्यके कारण वे केवल दो घण्टे ही सोने लगे थे। आजाद हिंद फौज को जो खाना मिलता था वह ही भोजन वह स्वयं भी ग्रहण करते थे। क० शाहनवाज ने तो यहां तक बताया है कि जब उनकी फौज घास खाती थी तो नेताजी भी घास खाते थे। नेताजी जिस कमरे में रहते थे उसमें १०, दरवाजे थे। प्रत्येक दरवाजे पर दो दो शस्त्रसज्जित सन्तरी तैनात रहते थे। उनमें से एक का मुंह बाहर की

ओर तथा एक का अन्दर की ओर रहता था। इसके अतिरिक्त एक अफसर रात भर रिवाल्वर लिए पूरे भवन का चक्कर लगाया करता था। इतनी सतर्कता के बावजूद भी उनकी हत्या के लिए कई प्रयत्न किये गये। १६४४ के फरवरी मास में नेताजी अपने निवासस्थान पर आ० हि० फौ० के कुछ उच्च अफसरों के साथ बात कर रहे थे। रोज की तरह सन्तरियों का एक दल दूसरे दल के आ जाने पर लौट रहा था। गार्ड कमाण्डर को शंका हुई। उसने लौटनेवाले दल की गणना की। एक आदमी फाजिल निकला। सबके नाम और नम्बर पूछने पर दो व्यक्तियों ने एक ही नाम बख्शी और कमाल के बताये। दोनों को एक दूसरे से अलग कर दिया गया। अकस्मात उनमें से एक ने अपना तमंचा निकाला, पर उसने तमंचा छू भर उसके हाथपैर बांध दिये गये। नेताजी ने शोर सुन कर पूछा—'क्या बात है?' अपराधी ने हिंदुस्तानी में जोर से चिल्लाकर कहा—"मैं तुम्हें मारने के लिए यहां आया था, लेकिन इस कुत्ते अफसर के लड़के ने मेरी कोशिशें बेकार कर दी।'

उसी महीने में एक और घटना घटी। अंधेरी रात थी। फाटक पर कमाण्डर खड़ा था। अकस्मात एक कार वहां पहुंची। गार्ड कमाण्डर ने कार में बैठे हुए आदमी से पूछा—'तुम कौन हो?' उत्तर मिला—'रासबिहारी बोस! जापानी सदर मुकाम से आ रहा हूं। जरूरी काम से नेता जी से मिलना चाहता हूं।' गार्ड अन्दर गया और नेता जी को सूचना दी। उन्होंने आश्चर्य से कहा—'क्या! रासबिहारी बोस तो टोकियो में हैं। फिर भी जाओ, उन महाशय को यहां लाओ।' पर जब गार्ड कमाण्डर बाहर आया तो कार अंधेरे में गायब हो चुकी थी। इसी प्रकार की एक और घटना भी प्रकाश में आई है। कहते हैं कि

२३ जनवरी '४४ को रंगून में नेताजी के जन्म दिन समारोह के बाद एक सिख ८० हजार रुपये भेंट करने के लिए नेताजी के पास आया। पहरेदार ने उसे रोक कर तलाशी ली तो उसके पास से एक रिवाल्वर बरामद हुआ। उसे फौरन गिरफ्तार कर लिया गया और नेताजी के सामने उपस्थित किया गया। नेताजी ने शांत भाव से निर्णय देते हुये कहा—"यह इसका दोष नहीं है। यह अपराध हमारी मातृभूमि की दासता का है। मैं इसे केवल इतनी सजा दूंगा कि जब हम दिल्ली पहुँचेंगे तो इस व्यक्ति को मैं अपने देशवासियों को दिखाऊंगा और कहूंगा कि भारत में ऐसे लालों की कमी नहीं रही और इसी कारण देश की बेड़ियां मजबूत हुई।"

नेताजी को अपने सैनिकों से बहुत प्यार था। अफसरों के साथ वे कोई रियायत नहीं करते थे। मोर्चे पर सिपाहियों की तरह पहुंचते थे। आजाद हिंद फौज के हवलदार श्री रेवाराम समस्तपुर के अनुसार एक बार पैराशूट से उतरने वाले दुश्मनों को कैद होने तक लड़कर गिरफ्तार किया था। कहते हैं कि एक बार एक बीमार सैनिक से नेताजी ने पूछा—तुम क्या चाहते हो? उसने कहा—'हिंदुस्तान के दुश्मनों का खून।' इसपर नेताजी ने उसे उठाकर कहा—'शाबाश जवान, शाबाश। हिंदुस्तान जरूर आजाद होगा।' एक बार सैंध के सिपाहियों द्वारा मिठाई मांगने पर सबको मिठाई पहुंचाई गई। उक्त हवलदार ने यह भी बतलाया कि जब हम दुश्मन के सैनिक गिरफ्तार करते तो नेताजी उन्हें दावत देते, अपने हाथ से चाय पिलाते और उनसे आजाद हिन्द फौज में शामिल होने की अपील करते थे। हिंदू मुसलमान दोनों के साथ वे समान व्यवहार करते थे और इसी का यह परिणाम था कि मुसलमान सैनिक बेरोकटोक मंदिरों में जाकर कुरान का पाठ किया करते थे

और हिंदू मस्जिद के मुल्लाओं को गीता पढ़कर सुनाया करते थे।

नेताजी के इस अद्भुत और आदर्श व्यक्तित्व और तापसी निरीहता का ही यह परिणाम था कि जापानी अपने सम्राट की तरह उनका सम्मान करते थे। उनके सामने पहुचने पर प्रत्येक जापानी उन्हें प्रणाम करता था और उनके फोटो के आगे भी झुककर निकलता था। प्रत्येक दिन प्रात काल जब प्रधान सैनिक शिविर में राष्ट्रीय ध्वजा का वंदन होता था तो नेताजी के आदेशानुसार समीपवर्ती सड़क से गुजरने वाले जापानियों को भी अपनी मोटरें रोककर उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करना पड़ता था। राष्ट्रीय ध्वजा का अपमान करने वाले के लिए मृत्यु दण्ड का विधान था।

दिल्ली चलो

"क्षितिज के उसपार, उसपार, इस बलखाती नदी के दूसरी ओर—लहराते जंगलों से परे धूमिल पहाड़ों की ओट में हमारी जन्मभूमि है। उसी धूलि से हमारे इन सुगठित शरीरों का निर्माण हुआ है। हमारी नस-नस में उसी जन्मभूमि का प्यार गुथा है। आज हम अपनी मातृभूमि से दूर हैं। नीड़ विहीन पक्षी की तरह हम अन्तहीन आकाश में मंडरा रहे हैं। लेकिन एक बार हमें फिर अपनी जन्मभूमि वापस जाना है।

"हवा की लहरों पर एक आवाज, एक पुकार तैरती आ रही है, भारत हमें पुकार रहा है राजधानी दिल्ली हमें पुकार रही है। हमारे ३८ करोड़ भाई हमें पुकार रहे हैं। अब हम नहीं रहेंगे। खून ने खून को पुकारा है।

"अपने हाथ में शस्त्र को लेकर उस पथ पर कूच करो जिसे हमारे ही बंधुओं ने बनाया है। शत्रुओं की पंक्तियों को चीरकर हमें अपने देश पहुंचना है।

या तो हम विजयी होकर दिल्ली में प्रवेश करेंगे या हमारी लाशें उसके मार्ग की धूलि का चुम्बन करेंगी।

"दिल्ली की राह स्वतंत्रता की राह है। चलो दिल्ली!"

नेताजी की इस ललकार घन-गर्जना के साथ ही ४ फरवरी १९४४ को रणभेरी बज उठी और दिल्ली की ओर कूच करने का आदेश दे दिया गया। दूर दूर तक का आसमान 'जय हिंद', 'आजाद हिन्द फौज जिन्दाबाद' और 'नेताजी की जय' के नारों से गूंज उठा। पतिशा की आग से नव जवानों की बाहें खिल गईं और उनके मुख मस्ताना से चमक उठे। आज इतने दिनों बाद अपने रक्त से मातृभूमि के चरण धुलवाने का अवसर आया था। १८५७ के महान सैनिक विद्रोह के बाद यह प्रथम ही मौका था जब कि एक गुलाम राष्ट्र के ३० लाख नौजवानों ने संगठित होकर अपनी आजादी हासिल करने के लिए शस्त्र सम्भाले थे। बर्मा, थाईलैंड, मलाया, जावा, कार्नियो आदि के समस्त भारतीय प्रवासियों के बीच उत्साह और जोश का सागर लहरें मार रहा था।

आ० हिंद सरकार का प्रधान शिविर ७ दिसम्बर १९४३ को ही रंगून आ चुका था और ३१ जनवरी को भारत पर आक्रमण की पूरी योजना बना ली गई थी। जापानी यह चाहते थे कि आ० हि० फौज बर्मा में अनिवार्य आक्रमण शुरू न करे, जापानी सेना को इम्फाल पर अधिकार करने दे और बाद में उसकी सहायता के लिए आ जाय। पर नेताजी को आ० हि० फौ० को यह विचार सह्य नहीं था। वे नहीं चाहते थे कि एक विदेशी राष्ट्र की सेनाएं सबसे पूर्व भारत में प्रवेश करें। उनके अन्दर यह भावना दृढ़ हो गई थी कि यह उनका युद्ध है और वे ही सबसे पूर्व भारत की सीमा में प्रवेश करेंगी। बर्मा में उस

समय ६० हजार आजाद हिंद फौज थी। उसमें से पहले केवल १० हजार को ही मोर्चे की ओर कूच का आदेश मिला। कूच करनेवाली इस सेना में निम्न पल्टनें थीं—

(१) सुभाष ब्रिगेड, कमांडर—कर्नल शाहनवाज खां ३२०० सैनिक।

(२) गांधी ब्रिगेड, कमाण्डर—कर्नल इनायत कयानी २८०० सैनिक।

(३) आजाद ब्रिगेड, कमाण्डर—कर्नल गुलजारासिंह २८०० सैनिक।

(४) नेहरू ब्रिगेड, कमाण्डर—कर्नल गुरुबख्शसिंह ढिल्लन।

(५) झांसी की रानी रेजिमेन्ट, कमांडर के० लक्ष्मी २००० महिला सैनिक।

(६) आजाद बाल-सेना—इसमें ८ से १२ वर्ष तक के बच्चे थे।

झांसी की रानी पल्टन को पहले कूच का आदेश नहीं मिला था। उसे केवल घायलों इत्यादि की सेवा शुश्रुषा का कार्य भार सौंपा गया इस पर महिला सेना असंतुष्ट हो गई और उसने के० लक्ष्मी के सभापतित्व में एक सभा की और उसमें नेताजी को निम्न विरोधपत्र भेजने का निश्चय किया गया।

'हमारी सैनिक शिक्षा पूरी हो गई है। परन्तु हमें मोर्चे पर जाने के अधिकार से वंचित कर दिया गया है। हमें निर्जीव नर्स मात्र बना दिया गया है। समझ नहीं आता कि हमारे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया गया है। आपने हम वीरांगना झांसी की रानी की

काम किया है। योनानमें प्रथम महिला शिक्षा शिविर खोलते हुए आपने हमें आश्वासन दिया था कि हम उसरानी की तरह युद्ध के मैदानमें लड़ेंगी। सशस्त्र फौजों में हमारी उपस्थिति दुश्मनों का साहस तोड़ देगी और ब्रिटिश सेना के भारतीय सिपाही अपने पक्ष में आकर मिल जायेंगे। हम आपसे प्रार्थना करती हैं कि आप हमें मोरचे पर कूच करनेका आदेश जारी कीजिए।"

इस विरोधपत्र पर ना महाराष्ट्र ब्राह्मण, दो बंगाली ब्राह्मण तथा दो गुजराती वैश्य महिलाओं ने अपने खून से हस्ताक्षर किये और उसे नेताजी के पास रवाना कर दिया गया। २ मार्च '४४ को उसका उत्तर आया और झांसी की रानी रेजिमेन्ट की दो कम्पनियों को मोर्चे पर कूच करने का आदेश दे दिया गया।

उधर इम्फाल के मोर्चे पर सबसे पूर्व कर्नल शाहनवाज के नेतृत्व में सुभाष ब्रिगेड आगे बढ़ी। प्रस्थान से पूर्व नेताजी ने उनसे कहा—

"भारत को स्वतन्त्र करने के लिए आप आजादी के सिपाही हो। युद्धक्षेत्र में आपको मुसीबतें झेलनी होंगी। यदि आप चाहें तो यहां ठहर सकते हैं। हम हिन्दुस्तान की आजादी के लिए लड़ रहे हैं। हमारे पास धन तथा अन्य साधनों की अधिक राशि नहीं है। जो कुछ सम्भव है वह हम आपको दे रहे हैं। हम अशक्त हैं। इसलिए राशन में अन्न की अपेक्षा कुछ अधिक नहीं दे सकते।"

बाद ब्रिगेड के कमाण्डर कर्नल शाहनवाज ने भी अपने सैनिकों को लक्ष्य करके कहा—"युद्ध-क्षेत्र में तुम्हें बड़ी बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा। तुममें से जो कोई मौत या मुसीबत से डरता हो वह अभी से अलग हो जाय। हमें स्वातन्त्र्य संग्राम में

लड़ना है। इसके लिए हमें जवांमर्द सुपूतों की जरूरत है—कायरों की नहीं।

"जब हम अपने मित्र जापानियों से कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ते हैं तो उसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि इस लड़ाई में हमारा स्थान गौण है। ऐसा सोचकर हम अपने देश की अप्रतिष्ठा करेंगे। जब हम भारत पहुँचेंगे तो हमें वहां पुरुष और स्त्रियाँ तथा स्नेहशीला युवतियाँ मिलेंगी। हम उन्हें माता तथा अपने से छोटी महिलाओं को बहिन तथा पुत्रियाँ समझेंगे। यदि कोई सैनिक इन आदर्शों की अवहेलना करेगा तो उसे गोली से उड़ा दिया जायगा। यदि भारत के मुक्त होने पर जापानियों ने हमें अपना गुलाम बनाने का प्रयत्न किया तो हम उनसे भी लड़ेंगे। अब भी यदि कोई जापानी तुम्हें एक थप्पड़ मारे तो तुम उसे तीन मारो। हमारी सरकार जापानी सरकार के बराबर है। यदि हमने किसी जापानी को अपनी स्त्रियों से छेड़छाड़ करते पाया तो पहले उसे चेतावनी दी जायगी और उसके न मानने पर उसे गोली से उड़ा दिया जायगा। हम जो लड़ाई लड़ने वाले हैं वह भारत की आजादी के लिए है—जापानियों के लाभ के लिए नहीं।"

इम्फाल के मोर्चे पर लड़ाई शुरू होगई और आजाद हिन्द फौज के रण बांकुरों ने, जो अपने देश की आजादी के लिए हथेली पर प्राण रखकर लड़ रहे थे, ब्रिटिश सेना के छक्के छुड़ा दिए। इस सेना की सहायता के लिए जापानी सेना की भी एक टुकड़ी थी और इसकी सर्वोच्च कमान स्वयं नेताजी के हाथ में थी। १८ मार्च के ऐतिहासिक प्रभात में इस सेना ने बर्मा की सीमा पार कर भारत भूमि में प्रवेश किया

प्रसन्नता के आवेश में समस्त भारतीय सैनिकों ने अपनी मातृभूमि को साष्टांग प्रणाम करते हुए उसको धूल का चूम लिया। यह एक दृश्य था जो हिन्दुस्तान के इतिहास में सदा एक अमर स्मृति बनकर रहेगा। उन्होंने माँ की चरण धूलि अपने हाथ में लेकर प्रतिज्ञा की "जब तक भारत स्वतन्त्र नहीं हो जाता हम कभी चैन से नहीं बैठेंगे।" इसके बाद तामू, पलेल, कोहिमा और डिमापुर आदि क्षेत्रों में ये सेनाएं आगे बढ़ती रहीं, संघर्ष होते रहे और आखिर २१ मई को इम्फाल घेर लिया गया। तामू, कोहिमा तथा अन्य कई गांव आ० हि० फौ० के हाथ लग चुके थे। तामू से पलेल तक कोहिमा-क्षेत्र के १५०० वर्ग-मील पर सुभाष ब्रिगेड कब्जा कर चुकी थी। आजाद हिंद फौज द्वारा विविध भागों पर हिंदुस्तान की सीमा के अन्दर जितने प्रदेश पर कब्जा कर लिया गया वहां जापानी सेनापति ने आजाद हिंद सरकार का अधिकार होने की घोषणा कर दी। इस विजित प्रदेश में शासन व्यवस्था के संचालन के लिए एक आजाद हिंद दल की स्थापना की गई। जे० विट्ठलराव इस दल के संचालक थे। सम्पूर्ण विजित प्रदेश पर जनरल चटर्जी को गवर्नर नियुक्त किया गया। तामीरात कृषि तथा स्वास्थ्य विभाग श्री पी० घोष तथा पुलिस विभाग श्री श्यामसिंह मिश्र के आधीन किया गया। छोटे झगड़ों के निपटाने तथा लगान आदि की वसूली के लिए तहसीलदार नियुक्त किए गए। मनिपुर के विजित प्रदेश में तथा विशनपुर में शासन की सम्पूर्ण व्यवस्था आजाद हिंद दल की ओर से की गयी। विशनपुर के शासक कप्तान एस० ए० मलिक नियुक्त किये गये।

उधर झांसी की रानी फौज की रेजिमेन्ट भी मोर्चे पर अपने जौहर दिखा रही थी। एक तो औरत और फिर तोपों और गोलियों की

मोर्चा। से डटे मोर्चे पर उतरी यह मदालसी। एक अद्भुत ही दृश्य था। जो देखता था विस्मित रह जाता था। अंग्रेज सैनिकों ने कभी स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं की थी कि उन्हें भारत की 'अबला' कहलायी जाने वाली नारियों के हाथ कभी मुंह की खानी पड़ेगी। अंधेरी रात थी। बहुत दिनों तक एक स्थान में पड़े रहने के बाद स्त्री सेना को आक्रमण बोल देने का आदेश हुआ था। एक लम्बी मंजिल तय करने की थी। उस समय लगभग २ बजे थे। सैकड़ों शस्त्र सज्जित नारियां झाड़ों में ज्योति और हृदयों में उत्साह लिए सेनापति के आदेश के अनुसार चुपचाप दबे पांव अपना लक्ष्य की ओर बढ़ी चली जा रही थीं। आखिर एक पहाड़ी पर मोर्चा बांधा गया। अब ब्रिटिश सेना और उनके बीच केवल १ मील का अन्तर था। ब्रिटिश फौज को यह कल्पना नहीं थी कि वहां स्त्री-सेना होगी। वह निराक भाव से आगे बढ़ी चली जा रही थी। पहाड़ी की घाटियों में पहुंचते ही स्त्री-सेना को फायर का आदेश हुआ।

नारियां अपना नारित्व भूल गईं और धड़ाधड़ गोलाबारी शुरू हुई। उनकी न जाने यह गोलाबारी कब तक चलती रही। आखिर उन्हें आदेश हुआ—'संगीन सम्भालो और टूट पड़ो'।

पहाड़ियों के ऊबड़ खाबड़ प्रदेश में स्त्री सेना संगीनें ताने दौड़ने लगी थीं। पहाड़ियां 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'आजाद हिंद जिंदाबाद' के युद्धघोष से गूंज उठीं। यह एक गिरी—वह दूसरी और उसके ऊपर से पीछे से आनेवाली सेना गुजर गई। चारों ओर की पहाड़ियों से सहस्त्रों आजाद हिंद के सैनिक निकल आये। १६ घंटे तक यह संघर्ष जारी रहा और आखिर ब्रिटिश सेना को पीछे हटना पड़ा। स्त्री-सेना के इस अपूर्व रण चातुर्य को देख कर वे दंग रह गये।

यह स्त्री-सेना मध्य काल की आन पर मिटनेवाली राजपूत स्त्रियों से किसी कदर कम नहीं थी। अपने सम्मान व सतीत्व की रक्षा के लिए वे अपने साथ सदा विष रखती थीं। इस सेना की ऐसी ही एक बहादुर स्त्री ने एक बार अपने पति को लिखा था--"मैं अपने साथ पोटाशियम साइनाइट की एक छोटी सी शीशी हमेशा रखती हूं। अगर जापानी दरिंदे मेरे शरीर को किसी प्रकार की पीड़ा पहुंचाने का प्रयत्न करेंगे तो उस समयमैं सर्वथा निस्सहाय न होऊंगी। मेरे प्रियतम ! अगर तुम यह सुनो तो समस्त सेना और विश्वास रखना कि मैं घृणित से घृणित और कठोर से कठोर यातना के सामने कभी नहीं झुकूंगी और आपके उज्वल घराने पर जरा भी आंच लगाये बिना उसके नाम, मर्यादा और शान को हमेशा ऊंचा बनाये रक्खूंगी।"

इसी प्रकार इम्फाल के मोर्चे की एक और मनोरंजक घटना है जो आजादी के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित की जायगी। १६ मई का दिन था। ब्रिटिश सेना की भारतीय टुकड़ी एक क्षेत्र में आ० हि० फौ० की एक टुकड़ी के सामने खड़ी थी। दोनों के बीच कुछ पेड़ों का ही अन्तर था। आ० हि० फौ० के सैनिकों ने एक तख्ते पर यह लिखकर पेड़ पर टांग दिया--'हमारे साथ आओ और देश की आजादी के लिए लड़ो।' उत्तर में उन्होंने एक तख्ते पर लिखकर टांगा--'जापानके गुलामो ! तुम्हारे पास खाने को नहीं है। हमारे साथ आओ। हम तुम्हें बिस्कुट और केक देंगे।"

आजाद हिंद फौज के सैनिकों ने प्रत्युत्तर में टांगा--"हम लोग सुभाषबाबू के आदेश से लड़ रहे हैं। गुलामी के घी और आट से हम आजादी की घास अधिक पसन्द करते हैं।" और इसके बाद पताका--गीत से आकाश गूंज उठा--

सर पर तिरगा झडा जलवा दिखा रहा है
कौमी तिरगा झडा ऊंचा रहे जहां में,
हो तेरी सरबुलंदी ज्यों चाद आसमां में।
तू मान है हमारा तू शान है हमारी।
तू जीत का निशां हो, तू जान है हमारी।
हर इक बशर की लब पै जारी हैं ये दुआएं,
कौमी तिरगा झडा हम शौक से उड़ायें।
आकाश और जमीं पर हो तेरा बोलबाला,
झुक जाय तेरे आगे हर ताज तख्त वाला।
हर कौम की नजर में तू हो निशां अमन का,
हो येमी मुकद्दर साथी तेरा जहां हो।'
मुस्ताफ बेनयामी खुश होकर गा रहा है,
सिर पर तिरगा झडा जलवा दिखा रहा है।

इसपर दूसरी ओर से भी हर्ष ध्वनि प्रकट की गई। कहते हैं कि वहां से भारतीय टुकड़ी को अविलम्ब हटाकर ब्रिटिश टुकड़ी तैनात कर दी गई।

४ जुलाई की एक और घटना है। आ० हिं० फौ० तथा जापानी टुकड़ी पलेल के हवाई अड्डे के समीप आ पहुंची थी। हवाई अड्डे पर रात को हमला करने का निश्चय किया गया। आ० हिं० फौ० के पास उन दिनों राशन की बड़ी कमी थी और वे जगली फलों और कन्द पर निर्वाह कर रहे थे। आ० हिं० फौ० कमाडर ने जापानी कमाडर से मांग की कि जापानी राशन में से एक समय का भोजन दे दिया जाय। जापानी कमाँडर ने उत्तर दिया—'हमारे पास भी राशन थोड़ा है। आज रात हम जहां जा रहे हैं वहां ढेरों अन्न है।' इस उत्तर से आ०

हि० फौ० कमाण्डर मे जा गया और उसने प्रतिज्ञा की कि रात पड़ने से पूर्व ही वह अपने आदमियों के लिये भोजन की व्यवस्था कर लेगा। उसने अपने आदमियों को एकत्र किया और कहा—'हमारे सामने जो यह हवाई अड्डा है, खाना तो यहीं मिलेगा। जापानी हमें मुट्ठी भर चावल देने को तैयार नहीं। मेरा ख्याल है कि हमें जापानी सेनाओं को यह दिखा देना चाहिये कि हिन्दुस्तानी अपनी व्यवस्था पर सकते हैं—भूखे पेट रहकर भी विजय प्राप्त कर सकते हैं। यदि आप लोगों को स्वीकार हो तो अभी हवाई अड्डे पर हमला बोल दो।'

"जयहिंद" के नारों के साथ आ० हि० फौ० ने हवाई अड्डे पर हमला कर दिया। आक्रमण इतना आकस्मिक और भीषण रूप में किया गया कि एक ही हमले में वह ब्रिटिश सेना के हाथ से निकल गया।

उधर बर्मा मोर्चे पर लड़ाई के साथ साथ पूर्वी एशिया में आजाद हिन्द संघ का काम जारी रहा। १० जून, ४४ तक उसके कोष में १ करोड़ ३३।।लाख रुपया एकत्र हो गया और मलाया में उसकी शाखाओं की संख्या ७० तक जा पहुंची। बर्मा में १०० थाइलैंड में २४ तथा जावा, सुमात्रा,व बोर्नियाव उसकी शाखाएं खुल गई। सामाजिक सेवा तथा शिक्षा का काम चलने लगा। बर्मा में ६५ तथा मलाया में ४ राष्ट्रीय स्कूल खोल दिये गये और हिन्दुस्तानी सिखायी जाने लगी। मलाया में ७०० एकड़ जंगल को साफ करके खेती के योग्य बना लिया गया। मलाया व बर्मा के अन्तरवर्ती प्रदेशों में सैकड़ों डाक्टर भेजकर वहां निःशुल्क चिकित्सा केन्द्र खोल दिए गए।

युद्ध के दो मासों—मई जून में नेता जी मोर्चे का दौरा करते रहे और व्यक्तिगत रूप से सेना को उत्साहित करते रहे। बीच में उनके जीवन को भी संकट उपस्थित हुए पर वे निर्भय भाव से अपने कर्म पथ पर अग्रसर होते रहे। एक बार की बात है कि वे पेगू से एक गांव में

जा रहे थे कि अंग्रेजी दस्तों ने घेर लिया। उस समय कर्नल लक्ष्मण ने अपनी जान जोखिम में डालकर नेताजी की रक्षा की। इस वीरता के लिए कर्नल लक्ष्मण को नेताजी ने शेर-ए-हिन्द की उपाधि से सम्मानित किया।

४ जुलाई को नेताजी वापस आ गए। स्योनान सम्मेलन में पूर्वी एशिया के आंदोलन की कमान संभाले आज उन्हें पूरा एक वर्ष व्यतीत हो गया था। रंगून की जनता अपने 'वीर' की पूजा के लिए उत्सुक थी। पूर्व निश्चय के अनुसार उस दिन नेताजी को हीरे जवाहरातों और आभूषणों से तोला गया। किसी ने नेकलेस, किसी ने हीराजड़ित बुंदे और किसी ने अपने समस्त आभूषण नेताजी के चरणों में समर्पित करके अपने को कृतकृत्य समझा। प्रसन्नता और त्याग की भावना के आवेश में जिसके पास जो कुछ था वह सब ही अपने 'देवता' के चरणों में भेंट कर देना चाहता था। नेताजी ने दक्षिण पूर्वी एशिया का दौरा करते हुए जनता से देश के नाम पर यह अपील की थी कि वे अपने सम्मुख यह आदर्श रखें —'करो सब निछावर बनो सब फकीर।' यह आदर्श आज रंगून में सम्पूर्ण रूप से चरितार्थ हुआ। नेताजी के सम्मान में 'नेताजी सप्ताह' मनाया गया। ४ जुलाई को जुबली हाल में एक विराट सभा हुई और नेताजी ने वर्ष भर के कार्य पर प्रकाश डालते हुए कहा—

'हम एक परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये हैं और उससे हमारे अन्दर सीमातीत विश्वास उत्पन्न हो गया है। लड़ाई हमारी मातृभूमि में हो रही है और यह हमारा युद्ध है, इस भावना ने सेना के अन्दर एक नवीन ही स्फूर्ति जागृत कर दी है। हस्पतालों में घायल और बीमार पड़े सैनिक तक यह इच्छा प्रकट कर

रहे हैं कि उनके हाथ होते ही उन मोर्चे पर भेज दिया जाय। वे बड़े प्रसन्न और आशावान दिखाई देते हैं।

' भारतवर्ष में स्थिति हमारे अनुकूल है। महात्मा गांधी की रिहाई के बावजूद अब यह स्पष्ट हो गया है कि अभी कांग्रेस और सरकार के बीच समझौते के कोई लक्षण नहीं हैं। गांधीजी अपने भारत छोड़ो प्रस्ताव पर दृढ़ हैं।

'इसलिये हमारी सेनाएं भारतवर्ष में ज्यों-ज्यों प्रवेश करती जायगी, जनता यह अनुभव करेगी कि युद्ध के सिवाय स्वतन्त्रता प्राप्ति का और कोई मार्ग नहीं है और तब वह अपना पूर्ण सहयोग देगी।'

५ जुलाई को नेताजी ने आ० हि० फौ० के सैनिकों के समक्ष एक भाषण करते हुए कहा—

"आजाद हिन्द फौज का निर्माण हमारे शत्रुओं के लिये बहुत चिंता और परेशानी का विषय बन गया है। शत्रु रेडियो यह प्रोपेगैण्डा कर रहा है कि सेना में जबर्दस्ती भर्ती की जा रही है। पर जिस आदमी को जरा सी भी अक्ल होगी वह यह अनुभव करेगा कि किसी आदमी को कन्धे पर बन्दूक रखने के लिये बाधित किया जा सकता है, पर उसे ऐसे उद्देश्य के लिये जान कुर्बान करने के लिए बाधित नहीं किया जा सकता है जो उसका अपना नहीं है।

"आजाद हिन्द फौज आजाद हिन्द की सरकार का सैनिक अंग है। यह अस्थाई सरकार और इसकी सेना दोनों ही भारत के सेवक हैं। उनका कार्य युद्ध और भारत को मुक्त करना है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यह जनता का काम होगा

कि वह अपनी अभीष्ट सरकार का निर्माण करे। उसी गौरव पूर्ण दिन के लिए आज हम अपना पसीना बहा रहे हैं—लड़ रहे हैं।"

आज के दिन दो व्यक्तियों को उनकी बहादुरी और देशभक्ति के पुरस्कारस्वरूप 'सरदार हिंद' और 'वीर ए हिंद' की उपाधि दी गई।

६ जुलाई को नेताजी ने गांधीजी के प्रति पितृ भावना से ओतप्रोत हो एक भाषण ब्राडकास्ट किया। आपने कहा —

"महात्मा जी! प्रवासी भारतीयों के लिए आप ही देश में नव जागरण के सूत्रधार हैं। वे तथा भारतीय स्वतन्त्रता के सभी विदेशी मित्र आपका जितना सम्मान करते हैं वह आप के 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव से सौगुना बढ़ गया है। यदि हम ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश जनता में भेद करेंगे तो यह हमारी ओर से भारी भूल होगी। जहाँ तक भारत का सवाल है वह दोनों एक हैं मैं आपको यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि यदि मुझे आशा होती कि बिना विदेशी सहायता हम स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेंगे तो ऐसे संकट काल में मैं भारतवर्ष को कभी न छोड़ता। मैंने अपने सारे जीवन को दाँव पर लगा दिया है।

"धुरीराष्ट्रों के सम्बन्ध में एक प्रश्न का उत्तर मुझे देना है। क्या यह सम्भव है कि मैं उनसे ठगा जाऊँ? जिसने अपना सारा जीवन ब्रिटिश राजनीतिज्ञों से लड़ाई करने में बिताया है वह संसार के दूसरे राजनीतिज्ञों से नहीं ठगाया जा सकता। मैंने अपने देश के हित और सम्मान के सम्बन्ध में कभी किसी से कोई समझौता नहीं किया है।

"मैंने जो आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की है उसका

केवल एक ही उद्देश्य है सशस्त्र संघर्ष द्वारा ब्रिटिश जुए से भारत की मुक्ति। अपने प्रयत्नों, कष्ट और बलिदानों का हम केवल एक ही पुरस्कार चाहते हैं—मातृभूमि की स्वतन्त्रता भारत का घर बैठे अपने प्रयत्नों से या सहयोगवश ब्रिटिश सरकार द्वारा 'भारत छोड़ो प्रस्ताव स्वीकार कर लेने से स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होगी। सशस्त्र संघर्ष अनिवार्य है। भारत की स्वतन्त्रता का अन्तिम संघर्ष शुरू हो गया है। आजाद हिन्द फौज दृढ़ और धीर भाव से आज भारत भूमि पर लड़ रही है। नई दिल्ली में वायसराय भवन पर तिरंगा झंडा उड़ाने तक हमारा यह संघर्ष जारी रहेगा।

"हमारे राष्ट्र के पिता! भारत की स्वतन्त्रता के इस पवित्र युद्ध में हम आपके आशीर्वाद और सद्भावना की कामना करते हैं।"

१० जुलाई को नेता जी ने ३० हजार की जनता में एक भाषण देते हुए कहा—'मित्रो! कोई मूर्ख ही हमारे शत्रु की शक्ति का कम अन्दाजा लगा सकता है। अराकान, चालादान, हाका, टिडिम, मनीपुर और आसाम में हमारी सैंकड़ों सेनाएं डेरा डाले पड़ी हैं। उनके पास राशन व साधन सामग्री हमारे पास से कहीं अधिक अच्छी है, परन्तु हमने फिर भी उनको हर जगह पराजित किया है। क्रांतिकारी सेनाओं को संसार में हर जगह ऐसी ही परिस्थितियों में लड़ना पड़ा है पर अन्त में विजय प्राप्त हुई है।'

११ जुलाई को दिल्ली के अन्तिम सम्राट बहादुरशाह के मकबरे पर

फौज की परेड हुई और तब नेताजी ने १८५७ के विद्रोह की याद दिलाते हुए कहा —

"जब मैं १८५७ की घटनाओं और क्रांति के बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा किये गये अत्याचारों को याद करता हूँ तो मेरा खून खोलने लगता है। यदि हम मर्द हैं तो हम १८५७ के शहीदों तथा ब्रिटिश आतंक के शिकार लोगों का प्रतिशोध अवश्य लेंगे। भारतवर्ष प्रतिशोध चाहता है। जिन्होंने भोले-भाले स्वतन्त्रता प्रिय भारतीयों का खून बहाया है उन्हें उसकी कीमत अदा करनी होगी। हम अपने दुश्मनों से पर्याप्त घृणा नहीं करते। यदि आप अपने देशवासियों के हृदयों में अमानवीय साहस और वीरत्व पैदा करना चाहते हैं तो उन्हें न केवल अपने देश से प्यार करना अपितु दुश्मन से घृणा करना भी सीखना चाहिए।

"इसलिये मैं खून की मांग करता हूँ। दुश्मन का खून ही उसके भूतकाल के पापों का बदला चुका सकता है। परन्तु हमें खून तभी मिल सकता है जब हम स्वयं खून बहाने के लिए तैयार हों। इसलिए आगे से हम खून देंगे। इस युद्ध में हमारे वीरों का खून ही हमारे भूतकाल के पापों का प्रायश्चित कर सकेगा और हमारी मुक्ति का मूल्य होगा।'

इस दिन के बाद से आजाद हिंद फौज का एक नारा 'खून का बदला खून' भी निर्धारित किया गया।

इस प्रकार 'नेताजी सप्ताह' के ये दिन बड़े उत्साह और जोश में बीते। अपने ओजस्वी भाषणों और अविश्रान्त परिश्रम से नेताजी ने लोगों में मातृभूमि के लिए अपना सब कुछ वार देने की तीव्र भावना भर दी। पर उधर मार्च पर मौसम विपरीत होने लगा। धारा सम्पात

वर्षा के कारण पहाड़ी और जंगली रास्ते मिट्टी और कीचड़ से भर गए। आगे बढ़ने में भीषण बाधा उठ खड़ी हुई। इसके विपरीत ब्रिटिश सेना ने वर्षा के लिए पूर्व ही प्रबन्ध कर लिया था और उनकी मोटरें व टैंक यत्नपूर्वक बनाई गई पक्की सड़कों पर धड़ाधड़ बढ़ने लगीं। १२ अगस्त को नेताजी ने समस्त मंत्रियों व कार्यकर्ताओं के सामने युद्ध स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए कहा—"हम वर्षा से पहले पहले इम्फाल पर कब्जा कर सकते थे। हमें यदि हवाई सहायता मिली होती और हमने अपना आक्रमण जनवरी में प्रारम्भ किया होता तो हमें सफलता मिल भी जाती। वर्षा से पूर्व तक हमने किसी क्षेत्र में शत्रु को रोके रक्खा और किसी में आगे बढ़ गये। अराकान और हाका क्षेत्रों में हमने शत्रु की प्रगति को अवरुद्ध कर दिया था और फालाम्‌न टिड्डिम, पलेल तथा कोहिमा क्षेत्रों में हमारी सेनाएं शत्रु को पराजित कर आगे बढ़ गई थीं। वर्षा शुरू होने पर हमें अपना आक्रमण रोक देना पड़ा। शत्रु की यांत्रिक सेना ने आगे बढ़ कर कोहिमा—इम्फाल रोड पर कब्जा कर लिया। तब हमारे सामने दो ही विकल्प थे—विशनपुर, पलेल मोर्चे पर शत्रु को रोके रखना अथवा पीछे हटकर अधिक सुदृढ़ स्थिति ग्रहण करना मार्ग के कठिन होने से हमारी रसद व यातायात की व्यवस्था अत्यन्त दोषपूर्ण है। मोर्चे पर प्रोपेगैण्डे के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं है। जापानी हमें लाउड स्पीकर सप्लाई नहीं कर सके हैं, किन्तु अब हम अपने बना रहे हैं।"

२१ अगस्त को नेताजी ने भीषण वर्षा के कारण सैनिक कार्यवाइयों को स्थगित करने तथा अगले आक्रमण के लिए तैयार होने का आदेश

दे दिया। २२ सितम्बर को शहीद यतीन्द्रनाथ दास का दिवस मनाया गया। रगून का जुबली हाल शहीद के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करनेवाले लोगों से ठसाठस भरा पड़ा था। सब ओर सिर ही सिर दिखाई पड़ते थे। 'इन्क्लाब जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए फांसी के तख्ते पर झूलने वाले अमर शहीद भगतसिंह, राजगुरु, अमर ज्योति चन्द्रशेखर आजाद, बगाल के जिला मजिस्ट्रेट पर गोली दागनेवाली सुश्री सुनीति और शांति और कलकत्ता के यूनिवर्सिटी हाल में बगाल के गवर्नर पर गोली चलाने वाली कुमारी बीणादास की स्मृति में अनेक भाषण हुए। श्रोताओं की आंखों में आंसू भर आये और वे सिसक सिसक कर रोने लगे।

नेताजी ने अपना हृदयस्पर्शी भाषण देते हुए कहा—"देश स्वतन्त्रता माँग रहा है। पर स्वतन्त्रता अपनी वेदी पर आपकी समस्त शक्ति, सम्पत्ति और सर्वस्व का बलिदान चाहती है। तुमने युद्ध देवता को बहुत से सैनिक दिए हैं, पर स्वतन्त्रता की देवी की पूजा अभी पूरी नहीं हुई है। आज वह केवल लड़ाके सिपाही नहीं चाहती, वह सिर पर कफन बाँधकर देहार्पण करनेवाले स्त्री-पुरुषों का बलि चाहती है। मुझे आवश्यकता है उन लोगों की जो अपने खून की नदियों में शत्रु को डुबा मारें।

तुम हमको खून दो।
मैं तुम्हें आजादी दूंगा!!

सहस्रों आवाजें एकसाथ आकाश में गूंज गईं—'हम तैयार हैं। हम अपना खून देंगे, लो।'

नेताजी ने कहा—'ठहरो, सुनो। मैं भावावेश नहीं चाहता। मैं

चाहता हूं कि मौत से विद्रोह करने वाले आगे बढ़ें और इस प्राणपण पत्र हस्ताक्षर करें।

'हम हस्ताक्षर करने को तैयार हैं'— श्रोताओं ने गर्जना की।

और यह हस्ताक्षर मामूली स्याही से नहीं करने हैं। अपेय करने की प्रतिज्ञा करनेवाले को अपने खून से हस्ताक्षर करने होंगे।

श्रोता लोग मंच की ओर दौड़े। सबसे पहले १७ चालिकाएं आईं। किसी ने चाकू से, किसी ने छुरी से चीर किसी ने पिन से अपना खून निकाला और खून की बूंदें गिरने लगीं। बूंदों में निभ डुबोकर उन्होंने। प्राणपण पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

जनता में इस प्रकार का जोश एक अविश्वसनीय चीज थी। लोगों की आंखें उत्साह से चमक रही थीं और चेहरे आवेश में लाल हो उठे थे।

२ अक्टूबर को सारे पूर्वी एशिया में गांधी-जयन्ती मनाई गई। घर घर पर तिरंगे झण्डे उड़ाये गये। प्रभात के समय फौज ने झण्डे सलामी की। स्वतन्त्रता के प्रतिज्ञा-पत्र पर रंगून के सहस्रों भारतीयों ने हस्ताक्षर किए। सायंकाल एक विराट सभा की गई। बीचोंबीच बने मंच के पीछे तिरंगे झण्डे लटकाए गए थे। हर खम्भे पर और हर डोरी पर तिरंगी झण्डियां लहरा रही थीं। मंच के दक्षिण पार्श्व में विदेशी मित्र राज्यों के तथा वाम पार्श्व में तापस बौद्ध भिक्षुओं के लिए स्थान नियत था। मंच के एक ओर महात्मा गांधी का एक आदमकद चित्र चांदी के फ्रेम में मढ़ा हुआ रखा था और उसके चारों ओर एक बड़ी सी माला पड़ी थी। सभा के आरम्भ होने पर सबसे पूर्व एक बौद्ध भिक्षु ने मंच पर आकर कुछ प्रार्थना की और उसके बाद आयड गुप्ती के विशेष प्रतिनिधि ने

कुरान से कुछ आयतें पढ़ी। इसके बाद नेताजी खड़े हुए और उन्होंने 'जय हिंद' 'आजाद हिंद जिंदाबाद' और 'नेताजी की जय' के नारों के बीच अपना भाषण आरम्भ किया। आपने कहा —

"गाँधी जी मेरे गुरु हैं। मैं अपने गुरु की स्मृति को प्रणाम करता हूँ।

"इस क्षितिज के पार, इन बलखाती नदियों और लहराते हुए जंगलों के पार हमारी स्वर्ण भूमि है—हमारे सपनों का देश।

"वह देश संसार का सबसे सुन्दर देश है। उसके आकाश में चान्द अजब रोशनी करता है, उसके वृक्षों की डालों पर बैठ पक्षी एक अजीब मिठास से बोलते हैं और उन्हीं वृक्षों की छाहों में बैठकर वहाँ के ऋषियों ने जीवन के विचित्र रहस्य हमें बताए हैं।

"गाँधीजी, जिनकी जयंती हम मना रहे हैं, आधुनिक ऋषि हैं। उनकी अहिंसा मानवता की एक मात्र आशा है।

"लेकिन गुलाम देश की अहिंसा, अहिंसा नहीं, कमजोरी होती है।

"इसलिए पहले हम अपने देश को आजाद करेंगे। मौत की मंजिलें पार करते हुए हमें दिल्ली पहुँचना है। जिस दिन दिल्ली पर तिरंगा झण्डा लहरायेगा उस दिन मणिजटित सिंहासन पर हम महात्माजी को बिठायेंगे, गंगाजल से उनके चरण धुलायेंगे और उनसे कहेंगे अब आप संसार का नेतृत्व अपने हाथ में लीजिये। अब आपकी अहिंसा की जरूरत है गुरुदेव।"

इन्हीं दिनों जब नेताजी इस प्रकार के हृदयस्पर्शी और उत्साहवर्धक भाषण दे रहे थे, दिल्ली रेडियो उनके विरुद्ध प्रचार कर रहा था और कह रहा था कि सुभाष बोस की बातें सब स्वप्न हैं, जो कभी सत्य

सिद्ध नहीं हो सकती। एक महिला सैनिक ने नेताजी से इस बात की शिकायत की। नेताजी गंभीर हो उठे और फिर होंठ कोणों में हल्की मुस्कराहट के साथ बोले—

"वे लोग मुझे स्वप्नद्रष्टा कहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मैं बचपन से ही स्वप्नद्रष्टा रहा हूँ, परन्तु मेरा सबसे प्यारा सपना भारतमाता को स्वतंत्र देखना है। वे स्वप्न देखने को बुरी बात समझते हैं, परन्तु मैं इसमें गर्व अनुभव करता हूँ। यदि मैंने भारत की आजादी के स्वप्न न लिए होते तो मुझे शाश्वत काल के लिए गुलामी की जंजीरें स्वीकार करनी पड़ती। सबसे बड़ी बात यह है कि क्या मेरे स्वप्न सत्य सिद्ध होंगे। संसार की उन्नति स्वप्नद्रष्टाओं और उनके सपनों पर ही आश्रित है— अन्याय, शोषण और बलाधिकारों के स्वप्न नहीं, सब राष्ट्रों के लिए स्वतंत्रता, सुख और समृद्धि के स्वप्न!

पर देश के भाग्य में शायद यह स्वप्न सच्चे होने नहीं लिखे थे। ब्रिटिश सेना के ७-८ मास तक भीषण संघर्ष और उसकी निरन्तर पराजय तथा भारतभूमि में आज़ाद हिंद फौज के चरण-प्रवेश से आशा की जो किरण दृष्टिगोचर होने लगी थी वह जापानी प्रत्यावर्तन और सहायता के अभाव से फिर अंधकार की काली छाया में विलुप्त होने लगी। मानसून के बीत जाने पर भी जापानी सेना न केवल बर्मा मोर्चे पर आगे न बढ़ सकी अपितु वह इम्फाल से भी पीछे हट गई। २६ दिसम्बर को चीनी सेना ने भामो पर अधिकार कर लिया और ब्रिटिश सेना बुथिडांग पहुँच गई। नेताजी फिर भी निराश नहीं थे। वे सेना का उत्साहवर्धन कर रहे थे और बार बार यह कहते थे कि आसाम और बंगाल की सीमा पर ही ब्रिटिश

कस कर मुकाबला करेंगे। बर्मा के पुनः हाथ से न निकलने देने के लिए था हिं० फौ० ने रक्षात्मक युद्ध शुरू कर दिया। यह वह समय था जबकि आ० हिं० फौ० विशुद्ध अपने बल बूते पर लड़ रही थी। प्रशांत में स्थिति के बिगड़ जाने से जापान की युद्ध योजनाएं अस्त व्यस्त हो गई थी और मोर्चे पर एक भी जापानी विमान दृष्टिगोचर नहीं होता था। आजाद हिन्द फौजके पास जो कुछ गोलाबारूद, राशन तथा पशु यातायात के साधन थे उन्हीं से वे १४ वीं ब्रिटिश सेना की प्रगति को अपनी जान लड़ाकर रोक रहे थे। कर्नल शाहनवाज के नेतृत्व में सुभाष ब्रिगेड ने ब्रिटिश प्रगति को अल्पसाधनों से जिस आश्चर्यजनक साहस और शौर्य के साथ रोके रक्खा वह संसार के युद्धों के इतिहास में एक अभूतपूर्व चीज रहेगी। पर आखिर आधे नंगे भूखे और जंगल की पेड़ पत्तियों पर निर्वाह कर लड़ने वाले ये जवामर्द सब प्रकार के सुव्यवस्थित गोला-बारूद, बमबर्षकों और यातायात के साधनों से लैस दुश्मन का कैसे मुकाबला करते। आखिर सेनापति ने उन्हें पीछे हटने का आदेश दिया। पर सेनाओं में उत्साह और मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए प्राणार्पण कर देने की भावना इतनी उग्र थी कि प्रत्यावर्तन के इस आदेश से उनमें असंतोष और क्षोभ की लहर दौड़ गई। प्रत्येक सैनिकने पीछे हटनेसे इन्कार कर दिया— 'हमसे नेताजी ने दिल्ली पहुंचने को कहा है। उन्होंने हमें चेतावनी दी है कि हम कैसी भी विषम परिस्थिति में पीछे कदम न हटायें। हमारे डिवीजन के ये, मदन रियाज और गुलामसरवर जैसे पथ-सवार मेजरों को आगे करके ब्रिटिश हमें धोखा देना चाहते हैं।' सेनापति तथा अन्य अफसरों ने उन्हें स्पष्ट किया कि 'हमारे पास बिल्कुल गोला बारूद नहीं है, कोई मोटर और ट्रक नहीं है और चिन्द

विन को पार करने के बाद ही हमारा राशन समाप्त हो गया था। हम लोग घास और कन्दमूल पर निर्वाह कर रहे हैं। हममें [illegible] बहुत से मलेरिया से पीड़ित हैं और दवाइयों का स्टाक भी समाप्त हो गया है। पीछे कदम रखने के सिवा अब और कोई मार्ग नहीं है।'

सेना को इस पर विश्वास नहीं हुआ और उसने कहा—'हम घास और पत्तियों पर रह रहे हैं और आगे भी रहेंगे। हम आगे बढ़ना चाहते हैं। दवाइयों की हमें चिंता नहीं। नेताजी के आदेश का उल्लंघन हम नहीं करेंगे।" इरावदी के पुल पर इन्होंने दो बार अंग्रेज सेना का मुंह की दी थी और अब भी उन्हें यह विश्वास था कि वे दुश्मन का सफाया कर देंगे। उनका कहना था कि यही मौका है कि उन्हें दुश्मन का पीछा करके सफाया करने दिया जाय। आखिर जब वे किसी तरह नहीं माने तो नेताजी का लिखित आदेश मंगाया गया। अब विरोध की कोई गुंजाइश नहीं थी। आंखों में आंसू और सिसकियां लेते हुए वे सैनिक पीछे लौटे। बच्चों की तरह वे रो पड़े और उस दिन उनमें से किसी ने नहीं खाया। क्या विश्व इतिहास में ऐसा बहादुरी और दिलेरी का एक भी उदाहरण आपको मिल सकता है? लाल किले की फौजी अदालत में कप्तान शाहनवाज की जो डायरी पेश की गई उसमें तात्कालिक स्थिति का बयान करते हुए एक पृष्ठ में लिखा था—"जापानियों ने हमारा साथ छोड़ दिया है, उनको अब हमारी आवश्यकता नहीं रही, पर मैं कभी अंग्रेजों के आगे हथियार नहीं डालूंगा और उनके स्थान पर रणक्षेत्र में मौत पसन्द करूंगा।"

इधर अराकान में ब्रिटिश सेनाएं उतर चुकी थीं और उधर जनरल मैकार्थर की सेनाएं प्रशान्त में एक द्वीप के बाद दूसरे द्वीप पर अपनी

विजय का झण्डा फहराती हुई प्रबल वेग से जापान की ओर बढ़ी चली जा रही थीं। १२०० अमेरिकन बमवर्षक ६ घण्टे तक टोकियो पर बमवर्षा कर चुके थे और अमेरिकन सेना जापान के निकटस्थ दक्षिणवर्ती द्वीप में अपने पैर जमा चुकी थी। ५ मार्च को मैकटिला का पतन हो गया और उसके बाद मायन्को और मेम्यो हाथ से निकल गये। जापानी लोग रंगून खाली करने पर जोर देने लगे, पर नेताजी का आग्रह था कि संघर्ष जारी रखकर रंगून को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए, क्योंकि बर्मा के हाथ से निकल जाने का अर्थ होगा कि दिल्ली पहले से भी दूर हो जायगा और स्वतन्त्रता की सारी आशायें मिट्टी में मिल जायगी। उस समय नेताजी ने एक आदेश सेना के नाम जारी किया जिसमें लिखा था—' हमारी आजाद हिंद फौज में कई गद्दार घुस आए हैं। उनसे फौज को पाक करना चाहिए। कायरों और गद्दारों को पूरा दण्ड दिया जाना चाहिए और सैनिकों से पुन वफादारी की शपथ ली जानी चाहिए। जब तक हमारा प्यारा देश दासता के पंजे से मुक्त नहीं हो जाता तब तक हम पूरे जोश, निडरता और पूरी शक्ति के साथ आजादी की लड़ाई मे हिस्सा लेंगे।"
उन्हीं दिनों नेताजी ने निम्न पत्र मेजर ढिल्लन को रंगून से लिखा—
मेजर जी० एम० ढिल्लन,

जय हिंद। मैं आपकी रेजीमेंट द्वारा किये गये कार्यों को ध्यानपूर्वक देख रहा हूं। आपने इस विपत्तिकाल में जिन कठिनाइयों का सामना किया है उसके लिये आपको बधाई देता हूं। वर्तमान विपत्ति में मुझे आप पर पूरा भरोसा है।

इस ऐतिहासिक संघर्ष मे हमारे साथ चाहे जो कुछ हो पर अब ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो हिंदुस्तान को और अधिक दूर

तक परतन्त्र रख सके। चाहे हम जीवित रहें और कार्य करें और चाहे लड़ते हुए मर जायं, हम प्रत्येक स्थिति में यह पूर्ण निश्चय और विश्वास रखता हूँ कि जिस उद्देश्य के लिये हम लड़ रहे हैं वह अवश्य पूरा होगा। भारत की आजादी के मार्ग की तरफ ईश्वर का संकेत है। हमें केवल अपना कर्तव्य पूरा करना है और भारत की स्वाधीनता का मूल्य अदा करना है। मान्डले की लड़ाई में जो राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का पथ प्रदर्शन कर रही है, हमारा हृदय आपके और आपके साथियों के साथ है। आपको और आपके मातहत अफसरों तथा सैनिकों के प्रति मेरी आन्तरिक शुभ कामना है। ईश्वर आपको शक्ति दे और विजय का सेहरा पहिनाये।

'जयहिन्द'
ह० सुभाषचन्द्र वसु

उक्त पत्र का कर्नल ढिल्लन ने जो उत्तर दिया वह निम्न है —

श्रद्धेय नेता जी,

जय हिंद। आपका १२ मार्च ४५ का पत्र मिला। शब्द नहीं, केवल आंसू की लड़ियाँ मेरे हृदयगत भावों को व्यक्त कर सकती हैं। आपने मेरे तथा मेरे साथियों के प्रति जो विश्वास प्रकट किया है उसके लिये मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। नेता जी, आपको मैं अपने रेजीमेण्ट की ओर से विश्वास दिलाता हूँ कि हमारे रास्ते में चाहे जो कुछ आये हम आपके आदेशानुसार लड़ाई जारी रखेंगे और भारतमाता की आजादी के लिये तब तक प्रयत्न करते रहेंगे जब तक इस रेजीमेण्ट का एक भी सैनिक जिंदा रहेगा।

अपने सन्देश में रंगून में कहे अपने अंतिम शब्द—मैं आप की आंखें किसी के सामने नीची न होने दूंगा—मेरे कानों में, जब से आपके पास से आया हूं और विशेषकर जब से नयाउंगू से लौटा हूं, लगातार गूंज रहे हैं।

मैं यह पूर्णरूप से अनुभव करता हूं कि मैं वह करने में असफल रहा जिसका मैंने वचन दिया और मैं ही एकमात्र ऐसा रेजीमेंटका कमाण्डर हूं जिसके कारण आपको व आज़ाद हिंद फौज को नीचा देखना पड़ा। मैं मुंह दिखाने के योग्य नहीं, केवल मेरे कार्य ही उसका प्रतीकार करेंगे।

आपके पत्रने मेरे अन्दर नयी प्रेरणा भर दी है। मैं और सब अफसर तथा सैनिक जो यहां उपस्थित हैं, हृदय से आपकी शुभकामनाएं स्वीकार करते हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि ईश्वर की कृपा और आपके आशीर्वाद से सफलता प्राप्त करना कठिन न होगा।

हम आपकी चिरायु और स्वास्थ्य के लिये प्रार्थना करते हैं जिससे कि आप इस धर्म युद्ध में हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहें।

जय हिंद

आप महानुभाव का आज्ञाकारी—

जी० एस० ढिल्लन

आखिर बर्मा को हाथ से न निकलने देने के लिए फिर मोर्चा बांधा गया। १४ मार्च को कर्नल सहगल ने दो टुकड़ियां प्यिनविल पर हमला करने भेजीं। रणयात्रा से पूर्व कर्नल शाहनवाज ने विदा दी और

कहा—"युद्ध के अनुभव ने मुझे यह सिखाया है कि शत्रु बड़ा कायर है। मुझे आशा और विश्वास है कि तुम लोग किसी भी तरह हिन्दुस्तान के नाम पर कलंक नहीं लगाओगे। मेरी शुभकामनायें तुम्हारे साथ हैं।

१६ मार्च को ये दोनों टुकड़ियाँ क्षेत्र पहुँचीं, परन्तु उनके साथ के जापानी अफसर तथा इसके अनुपम की मार से गोले बरसने ही भाग खड़े हुए। उधर उस क्षेत्र से एकबार फौजी शिविर को लौटते हुए कर्नल सहगल की गिरफ्तारी हो गई और टौंगविंगी तथा मधेओ पर ब्रिटिश कब्जा हो जाने के कारण आ० हि० फौ० के पास पीछे हटने का भी कोई मार्ग नहीं रहा। इस पर मोनगिंगन गाँव में अफसरों की एक बैठक में इस शर्त पर आत्मसमर्पण करने का निश्चय कर लिया गया कि उनके साथ युद्ध-बन्दियों जैसा व्यवहार किया जायगा। मित्र अधिकारियों ने उनकी इस शर्त को स्वीकार कर लिया और उसके साथ ही आ० हि० फौ० के ४० अफसरों और ४०० सैनिकों ने ४/१० गुरखा राइफल्स के ले० कर्नल जे० ए० फिटमन को आत्मसमर्पण कर दिया।

इधर जापानी सेनापति व अन्य अफसर रंगून से भाग खड़े हुए। स्थिति अत्यन्त विषम हो गई। रंगून स्थित आजाद हिंद फौज के अधिकारियों और सैनिकों ने नेताजी से अनुरोध किया कि वे वहाँ से किसी सुरक्षित स्थान पर चले जावें। नेताजी झांसी की रानी फौज तथा अन्य सब साथियों को छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहते थे पर बहुत आग्रह किये जाने पर वे आँखों में आँसू भर कर बैंकोक रवाना होने के लिए विमान पर चढ़ गये। प्रस्थान से पूर्व नेताजी ने बर्मा स्थित भारतीयों तथा बर्मा वासी मित्रों को निम्न संदेश दिया—

भाइयो और बहिनो ! मैं अत्यन्त दुःख के साथ वर्मा से प्रस्थान कर रहा हूँ। स्वातंत्र्य प्राप्ति का हमारा प्रथम युद्ध विफल हुआ, पर अभी हमें बहुत से युद्ध करने हैं। इस युद्ध में विफलता प्राप्त होने से निराश होने का कोई कारण नहीं। वर्मा-स्थित मेरे देशवासी भाइयो ! हमने अपनी मातृभूमि के प्रति अपना कर्तव्य पूरा किया है। उससे आपके प्रति विश्व में प्रशंसा का भाव जागृत हुआ है।

"आपने उदारतापूर्वक सैनिक, आर्थिक और सामग्री की सहायता की है। आपने पूर्ण सैनिक संगठन का प्रथम उदाहरण उपस्थित किया है, परन्तु परिस्थितियां अत्यन्त विषम हो गई हैं और हमने अस्थाईरूप से वर्मा का युद्ध हार दिया है।

"स्वार्थनिरहित बलिदान की जो भावना आपने प्रदर्शित की है—विशेषकर तबसे जबसे मैंने अपना प्रधान शिविर वर्मा में बदल लिया,—वह मैं आजीवन नहीं भूल सकूंगा।

"मेरा पूर्ण विश्वास है कि वह भावना विनष्ट नहीं हो सकती। भारत की स्वतन्त्रता के नाम पर मैं आपसे अपील करता हूँ कि उस भावना को जागृत रखना, अपने सिरों को उन्नत रखना और उस भाग्यशाली दिन की प्रतीक्षा करना जब कि एक बार फिर आपको भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ने का अवसर प्राप्त होगा।

"मैं अपनी इच्छा से वर्मा नहीं छोड़ रहा हूँ, परन्तु मेरे मन्त्रियों और अधिकारियों का ऐसा ही आग्रहपूर्ण परामर्श है। भारत के स्वतन्त्रता-संघर्ष को जारी रखने के लिए ही मैं वर्मा छोड़ रहा हूँ। मैं जन्म से आशावादी हूँ। भारत की शीघ्र मुक्ति

की मेरी आशा खण्डित नहीं हुई है और आपसे भी मैं उस आशावादिता की अपील करता हूँ।

"मैंने हमेशा कहा है कि अन्धकार के बाद उषा का आगमन होता है। हम एक अंधकारपूर्ण घड़ी से गुजर रहे हैं, इस लिए उषा का प्रकाश दूर नहीं है—भारत अवश्य स्वतंत्र होगा।

"मैं इस युद्ध के संचालन में बर्मा की जनता और सरकार से प्राप्त सभी प्रकार की सहायता के लिए अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ। वह समय भी आयेगा जब स्वतंत्र भारत इस ऋण को प्रसन्नतापूर्वक चुकायगा।" इन्किलाब जिन्दाबाद! आजाद हिन्द, जिन्दाबाद!! जयहिंद!!!

सुभाषचन्द्र बोस

इसी प्रकार एक सैनिक आदेश २१ अप्रैल ४८ को सर्वोच्च सेनापति के रूप में आजाद हिन्द फौज के नाम भी जारी किया जिसमें कहा गया था—"मैं बहुत भारी दिल लेकर बर्मा छोड़ रहा हूँ। इम्फाल और बर्मा में हम आजादी की लड़ाई के पहले दौर में हार गए हैं, परन्तु यह पहला ही दौर है। अभी लड़ाई के बहुत से दौर आने को हैं। मैं जन्म से आशावादी हूँ। कैसी भी परिस्थिति हो मैं पराजय स्वीकार नहीं करूंगा। इम्फाल के मैदानों, अराकान के जंगलों और पर्वतों और बर्मा के तेल क्षेत्रों तथा अन्य स्थानों पर शत्रु के साथ लड़ते हुए तुमने जो वीरत्व और साहस प्रदर्शित किया है वह हमारी स्वतन्त्रता के संघर्ष के इतिहास में सदा अमर रहेगा।

"साथियो! इस संकटपूर्ण घड़ी में मैं आपको केवल एक

आदेश करूंगा—यदि आपको अस्थायी रूपसे झुकना भी पड़े तो बहादुरों की तरह—अपने सम्मान और अनुशासन को पूर्णरूप से कायम रखते हुए झुकना। भारत की भावी सन्ततिया जो तुम्हारे महान त्याग के कारण गुलामी, रूपमें नहीं अपितु आजाद मनुष्योके रूप मे पैदा होगी, तुम्हारे नामों को आशीर्वाद देंगी और दुनिया को कहेंगी कि हमारे पूर्वजों ने मनीपुर, बर्मा और आसाम मे लड़ाई लड़ी थी

"भारतीय मुक्ति मे मेरा विश्वास अब भी अखण्डित है। मैं तुम्हारे हाथों में राष्ट्रीय तिरगा झण्डा, राष्ट्र का सम्मान और भारतीय योद्धाओ की सर्वोत्तम परम्परायें छोड़ जा रहा हूँ। मुझे इसमें सन्देह नही है कि तुम, भारतीय स्वतन्त्रता सघर्ष के अग्रदूतो, भारत के सम्मान की रक्षा के लिए सब कुछ, जीवन तक बलिदान कर दोगे, जिससे कि सघर्ष को जारी रखने वाले तुम्हारे साथियों को तुम्हारा यह जाज्वल्यमान उदाहरण सदा प्रेरणा देता रहे।

" मैं आपको यह विश्वास दिलाता हूँ कि पूर्वी एशिया तथा भारत मे हमारे देशवासी सब परिस्थितियो मे लड़ाई जारी रखेंगे। और आपके बलिदान व कष्ट व्यर्थ नहीं जाएगे। २१ अक्तूबर १९४३ को मैंने ३८ करोड़ देशवासियो की सेवा तथा उनसे मुक्ति-सघर्ष की जो प्रतिज्ञा ली थी उसपर दृढ रहूँगा। मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप भी इसी आशावादिता को हृदय में रक्खें कि अधकार के बाद ऊषा के दर्शन होंगे। भारत

जल्दी ही स्वतन्त्र होगा।'

परमात्मा तुम्हें आशीर्वाद दे।

इन्कलाब जिन्दाबाद!

आजाद हिन्द जिन्दाबाद!!

जयहिन्द!!!

सुभाषचन्द्र वसु

रंगून में उस समय ७ हजार आ० हि० फौ० सैनिक थे। उन्हें आदेश दे दिया गया कि वे जनरल लोकनायम की कमान में शहर की व्यवस्था तथा सम्पत्ति की रक्षा का कार्य सम्भालें तथा ब्रिटिश फौज के वहां पहुंचने पर एक व्यवस्थित तरीके से आत्मसमर्पण कर दें। इ० इ० लीग का सारा कार्य भी बहादुरी के सुपुर्द कर दिया गया, क्यों कि वे ही सबसे पुराने तथा लीग के उपाध्यक्ष थे। आजाद हिन्द सरकार बैंकाक चली गई और जाने से पूर्व पाई पाई का हिसाब चुकता कर गई। चूंकि स्वतन्त्र बर्मा सरकार के पास अपने सैनिकों को देने के लिये पैसा नहीं था इस लिए आजाद हिंद बैंक ने उसे ५ लाख रुपए उपहार के रूप में दे दिये। यह निश्चय किया गया कि ब्रिटिश लोगों के वहां पहुंचने पर भी बैंक यथापूर्व जारी रहेगा।

अप्रैल के अन्त में तुंगो, २ मई को पेगू और ४ मई को रंगून का पतन हो गया। इस मध्यवर्ती काल में आ० हि० फौ० ने रंगून में ऐसी सुन्दर व्यवस्था रखी कि डकैती या चोरी का एक भी केस नहीं हुआ। तथा जहां जहां भी इ० इ० लीग की शाखाएं थीं वहां वहां सदस्यों ने भारतीय व बर्मी जीवन व सम्पत्ति को क्षति न पहुंचने के लिए कुछ उठा न रखा। रंगून का प्रबन्ध अब ७४ वीं भारतीय सेना

के ब्रिगेडियर लाडर के हाथ में आ गया। वे श्री बहादुरी से मिले और कहा कि संघ को चाहिए कि वह राजनैतिक कार्य को छोड़ दे तथा सामाजिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य जारी रक्खे। श्री बहादुरी ने यह बात स्वीकार कर ली। आ० हि० फौ० के सम्बन्ध में ब्रिगेडियर लाडर ने जनरल लोकनायन को आश्वासन दिया कि—'सब स्त्री व पुरुष सैनिकों को स्वतन्त्र व्यक्तियों के रूप में भारत जाने दिया जायगा।' पर साथ ही यह प्रार्थना की कि वे अपनी वर्दियां उतार दें तथा ब्रिटिश भारतीय सेना के अफसर अपने पुराने पदों को धारण कर लें।

आपने जनरल लोकनायन को यह दृढ़ आश्वासन दिया—'आजाद हिन्द फौज के सैनिकों व अफसरों से समान संख्या के ब्रिटिश भारतीय सैनिकों के साथ ही आवश्यक कामों पर लगाया जाने के सिवा और कोई काम नहीं लिया जायगा।' यह भी फैसला कर लिया गया कि आ० हि० फौ० कैम्प की रक्षा का कार्य आ० हि० फौ० के हाथ में रहेगा तथा वह अपना तिरंगा झण्डा उड़ा सकेंगे और अपना राष्ट्रीय गीत गा सकेंगे।

पर धीरे धीरे सख्ती कड़ी की जाने लगी। आ० हि० फौ० बैंक का रुपया जब्त कर लिया गया, किसी पर जुर्माना कर दिया गया और किसी पर नियमपूर्वक थानेमें खबर करने का प्रतिबन्ध लगा दिया गया। श्री बहादुरी को गिरफ्तार करके रंगून भेज दिया गया। झांसी की रानी की फौज भी इससे नहीं बच सकी। उसकी कमाण्डर डा० लक्ष्मी को गिरफ्तार करके कलेवा भेज दिया गया। इस समय आप बर्मा में ही

नारायण हैं। आपकी उम्र ५७ वर्ष की है और आप केन्द्रीय मन्त्रीमण्डल की रही सदस्य श्रीमती अम्मू स्वामीनाथन की पुत्री हैं।

आ० हि० फौ० का सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण होते ही उसे भी रंगून की सेण्ट्रल जेल में डाल दिया गया, इसके ऊपर ब्रिटिश पहरा बिठा दिये गये और इनसे ब्रिटिश भारतीय सेना की देखरेख में बर्मा की सड़कों पर मेहतरों और कुदाई सफाई का काम लिया जाने लगा। युद्ध-बन्दियों के स्थान पर साधारण कैदियों सा व्यवहार किया जाने लगा।

इस सम्पूर्ण दुर्व्यवहार के बावजूद आ० हि० फौ० सैनिकों का उत्साह और नैतिकता अक्षुण्ण रही। वे अत्याचार के सामने झुके नहीं। उनका आत्म विश्वास अडिग रहा। १५ अगस्त १९४५ को जापान के पराजय और आत्म समर्पण करने पर भी वे आत्म समर्पण करना नहीं चाहते थे। नेताजी के पत्र शब्दों में यह स्पष्ट रूप से कह दिया—'जापान ने भले ही आत्म-समर्पण कर दिया हो पर हमने तो नहीं किया है।'

१७ अगस्त की शाम नेताजी आ० हि० फौ० के सैनिकों से मिले पर उनके साहस और उत्साह को देख कर वे उनसे आत्म-समर्पण की बात न कह सके। १८ अगस्त को बैंकाक से टोकियो के लिए प्रस्थान करने से पूर्व उन्होंने कर्नल भोंसले को आत्मसमर्पण करने का आदेश दे दिया। कर्नल भोंसले द्वारा उक्त आदेश जारी करते ही सारे फौजी कैम्प में क्षोभ छा गया। धौलपुरी कैम्प में जब यह समाचार पहुंचा तो फौजियों ने एलान कर दिया कि जो कोई उन्हें आत्म-समर्पण के लिए कहेगा, उसे वे गोली से उड़ा देंगे। बहुत समझाने बुझाने पर



आजाद हिन्द फौज के प्रथम मुकदमे की फौजी अदाल

सौदागर ।



आजाद हिन्द फौज के प्रथम मुकदमे के सफाई पक्ष के वकील।

और यह आश्वासन मिलने पर कि कोई अंग्रेज अफसर उनके कैम्प में नहीं आयेगा, वे आत्म समर्पण के लिए तैयार हो गये। अंग्रेज सेना के कर्नल शिवदत्तसिंह ने सुरक्षा का पूरा आश्वासन देकर कर्नल भोंसले से अपने यहां सोने का आग्रह किया पर उसके चौथे दिन ही उनको गिरफ्तार कर लिया गया और उसके बाद तो आ० हि० फौ० के हजारों सैनिक धड़ाधड़ गिरफ्तार कर लिये गए।

नेता जी कहां ?

वर्तमान युद्ध के महाविनाशक अस्त्र परमाणु-बम का अमेरिका द्वारा प्रयोग किये जाने और सोवियत रूस के अकस्मात ही उसके विरुद्ध युद्ध घोषणा कर देने के परिणामस्वरूप ६ अगस्त १९४५ को जापान ने बिना शर्त आत्म समर्पण कर दिया। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को पूर्व ही निश्चित हो चुका था कि जापान की पराजय सन्निकट है। वह यद्यपि लड़ाई को जारी रखने के पक्ष में थे और आत्मसमर्पण करना भारतीय प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझते थे किन्तु जापान के आत्म समर्पण ने विचित्र स्थिति उत्पन्न कर दी। अन्ततः उन्होंने मित्रराष्ट्रीय अधिकारियों के समक्ष आ० हि० फौ० का स्वतन्त्र रूप से पृथक आत्म समर्पण करने का निश्चय किया और इसकी व्यवस्था के लिये वह १८ अगस्त को बैंकाक से टोकियो रवाना होगये। कर्नल हबीबुर्रहमान तथा एकाध जापानी अफसर उनके साथ थे। जब वह वायुयान फारमोसा

१८ए के ताइहोकू हवाई अड्डे पर पहुंचा, तब कहते हैं कि दुर्घटना के कारण वायुयान के इंजिन में आग लग गई और नेताजी तथा उनके अंगरक्षक करनल हबीबुर रहमान दोनों बुरी तरह घायल हो गये। २३ अगस्त को टोकियो रेडियो ने यह समाचार प्रचारित किया कि नेताजी सुभाष का १६ अगस्त को टोकियो के एक अस्पताल में देहान्त हो गया।

यद्यपि कर्नल हबीबुर रहमान के दिल्ली के लाल किले में पहुंचने पर उनसे प्राप्त सूचनाओं के आधार पर मेजर जनरल शाहनवाज, कर्नल सहगल और श्री अय्यर प्रभृति प्रमुख व्यक्तियों ने नेताजी की मृत्यु विषयक सम्वाद की पुष्टि की है, किन्तु अनेक ज्योतिषियों, कप्तान लक्ष्मी स्वामीनाथन तथा महात्मा गांधी ने भी इस समाचार पर अविश्वास प्रकट किया है और उनका दृढ़ विश्वास है कि नेता जी अवश्य कहीं छिपे हुए हैं। टोकियो-रेडियो द्वारा नेता जी की कथित मृत्यु के सम्बन्ध को देर में प्रकाशित करने, उनके क्रियाकर्म में टोकियो प्रवासी भारतीयों को आमन्त्रित न किये जाने तथा जिस एक अन्य जापानी अफसर के उस वायुयान दुर्घटना में मारे जाने का समाचार दिया गया था, उसी के सिंगापुर में आत्म-समर्पण विधि के अवसर पर उपस्थित रहने आदि से जिन लोगों ने इस सम्वाद को सन्देह बुद्धि से देखा है, उनका कुछ समर्थन अवश्य हो जाता है। पर यदि नेताजी जीवित हैं तो वे कहां हैं—यह एक प्रश्न है जो रहस्य से आवृत है और इसका उत्तर कोई त्रिकालदर्शी ही दे सकता है।

थी और उसने ५ नवम्बर ४५ को मे ० जनरल शाहनवाज, कर्नल सहगल और लेफ्टि० ढिल्लो के विरुद्ध फौजी अदालत में मुकदमा चलाये जाने की घोषणा कर दी। कांग्रेस की ओर से श्री भूलाभाई देसाई, बख्शी सर टेकचन्द, सर तेजबहादुर सप्रू, रायबहादुर दीवान बद्रीदास और श्रीआसफअली प्रभृति कानूनदां पैरवी के लिए नियत किए गये। मुकदमा दो मास तक चलता रहा। सरकार ने इस मुकदमे में जो गवाह पेश किये, वे सभी आ० हिं० फौ० के भूतपूर्व सदस्य थ। किन्तु पहले गवाह लेफ्टि० नाग ने जब अपना बयान दिया तब ही सरकार का पक्ष बहुत कमजोर नजर आने लगा। बाबूराम आदि गवाह ने यह कहकर कि हमे बयान रटाये गये हैं, सरकार की स्थिति और भी खराब कर दी। दूसरगवाहों के प्राय सभी गवाहों ने यह स्वीकार किया कि आ० हिं० फौ० का निर्माण शुद्ध देशभक्ति की प्रेरणा से हुआ और वह जापानियों की कठपुतली नहीं थी, उसमे भर्ती स्वेच्छा पर थी और उन लोगों ने जापानी कैम्पों मे दुरवस्था मे सड़ने की अपेक्षा हिन्दुस्तान को आजादी के लिए मरना बेहतर समझा। डिफेंस कमेटी की ओर से सफाई मे जापान के दो भूतपूर्व सहायक विदेश मन्त्रियों श्री मत्सुमोतो तथा श्री सावादा एव तीन जापानी फौजी अफसरों को पेश किया गया।

श्री भूलाभाई देसाई ने मुकदमे की पैरवी अत्यन्त योग्यता पूर्वक की। सफाई के प्रधान वकील के नाते आपने अपने भाषण मे कहा "प्रस्तुत मामला तीन व्यक्तियों द्वारा सम्राट के विरुद्ध युद्ध छेड़ने तक ही सीमित नहीं है। स्पष्ट है कि व तीनो एक ऐसी सगठित सेना के अग थे, जिसने सम्राट के खिलाफ जग का

ऐलान किया था। इसलिये अदालत के सम्मुख प्रस्तुत प्रश्न इस अधिकार के विषय मे है कि कोई पराधीन राष्ट्र जब अपनी मुक्ति के लिये जंग छेड़ता है, तब वह विद्रोह के अभियोग से बरी रहता है या नहीं।

"किसी भी राष्ट्र या उसके अंग को अपनी आजादी के लिये युद्ध छेड़ने का अधिकार है और युद्ध छिड़ जाने पर युद्ध के दौरान मे किये गये अपराधों के लिए युद्धरत सेनाओ के सदस्यों को अन्तर्राष्ट्रीय कानूनके अनुसार दण्ड नहीं दिया जा सकता। आ० हि० फौ० को भी हिन्दुस्तान की आजादी के लिए युद्ध छेड़ने का अधिकार था और युद्धरत दशा मे उसके सिपाहियो द्वारा किये गये अपराध व्यक्तिगत रूपमे दण्डनीय नहीं हो सकते।

"१६११ के इन्डियन आर्मी एक्ट की ४५ वीं धारा मे कोर्ट मार्शल का ३० कोड़े लगाने की इजाजत है। अतएव इन्डियन आर्मी एक्ट के आधार पर बने उसके ही जैसे आ० हि० फौ० एक्ट की निंदा करना का अर्थ इंडियन आर्मी एक्ट की निंदा करना है।

"आजाद हिंद सरकार पूर्णतया सुसंगठित थी विधानानुसार उसकी सेना थी जिसके दो उद्देश्य थे—भारत की आजादी तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया के भारतीयो के जानोमाल की रक्षा। आ० हि० सरकार के पास अंडेमान और नीकोबार थे और वह मनीपुर के निकटवर्ती विजित प्रदेश पर शासन करती रही है। जियाबाड़ी का प्रदेश भी उसके पास था। उसको स्वतंत्र रूप मे पृथक आय थी और उसने 'आजाद हिंद स्टाम्प' तथा सिविल एण्ड मिलिट्री गजट भी जारी किए थे। इन सब परस्थितियो को देखते